कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

14-5-83

सतगुरू कवीर साहेब तथा सर्व सन्तो की
दया से ॥

॥ कबीर संग्रह ॥

॥ अथ प्रथम भाग ॥

॥ चौरासी अंग की साखी ॥

साखी आंखी ज्ञान की, समुझ देखु मन माहि।
विन साखी संसार, की झगरा छूटत नाहिं ॥ १ ॥
आधी साखी शिर खंड़, आखी कहां समाय।
रति यक घटमें ऊतरे, सत्त लोक ले जाय ॥

सतगुरू कवीर साहेब कृ[illegible]
तथा
किसी कव[illegible]थ[illegible]हात्मा संग्रहीत
वो
युगलानंद कवीर पंथी ट्रैवलर द्वारा
संशोधित ॥

※ ॥ सत्य कबीर की दया ॥ ※

❀ ॥ निवेदन ॥ ❀

ग्रन्थ आरम्भ करने के पहिले इसको अवश्य बांचिये ॥

जो महाशय निर्पक्ष रीति पर तत्व जानने की इच्छा से इस
को देखैं उन सज्जनों से यह प्रार्थना है कि प्रथम आद्योपांत पुस्तक
विचार दृष्टि से देख जावें और आनन्द को प्राप्त करें ॥

तथा वे महाशय जो किसी धर्म के पक्षपाती भी हों तो उन
शय से भी यह निवेदन है कि आद्योपान्त देखि यदि सत्य मा
हो तो कुछ धारण करें नहीं तो मिथ्या वितण्डा से सन्त पुरुष
वाक्यों को नतकार न कर, बार २ विचारही करें, मगर आद्योप
न देख केवल एकही भाग को देखकर उसपर दोषारोपन करने
पाप के भागी हो, निन्दा के पात्र न बनें ॥

बिन देखे को बोल जस, अंधरे हाथि परेख ।
बलिहारी वहि संत के, निरखि परखि के देख ॥
बिन देखे वहि देशकी, बात कहै सो कूर ।
आपे खारी खात हैं, बेचत फिरैं कपूर ॥

आपका शुभ चिंतक .
युगलानन्द.
कबीर पंथी ट्रैवलर.

॥ सत गुरुभ्योनमः ॥

॥ प्रमात्मनेनमः ॥

॥ अंग की साखी ॥

* ॥ कबीर साहेब प्रणीत ॥ *



❁ ॥ अथ गुरुदेव का अंग प्रारम्भः ॥ १ ॥ ❁

गुरु को कीजै दण्डवत, कोटि कोटि प्रणाम।
ीट न जानै भृंग को, वह(गुरु)करले आपसमान १॥
ागत जनायो जेहि सकल, सो गुरु प्रगटे आय।
जिन गुरु आंखिन देखिया, सो गुरु दिया लखाय ॥
ली भई जो गुरु मिला, नातर होती हानि।
ीपक ज्योति पतंग ज्यों, पड़तो पूरा जानि ॥
ली भई जो गुरु मिला, जासो पाया ज्ञान।

घटहि माहि चबूतरा, घटही माहि दिवान ॥ ४ ॥
कबीर गुरु गरुआ मिला, रुल गया आटे लौन ।
जाति पांति कुल मिट गया, नाम धरेगा कौन ॥५॥
ज्ञान प्रकाशी गुरु मिला, सोजन बिसरि ना जाय ।
जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरु मिलिया आय ॥
गुरु गोविन्द कर जानिये, रहिये शब्द समाय ।
मिलै तो दण्डवत बन्दगी, पल २ ध्यान लगाय ॥
गुरु गोविन्द तो एक हैं, दूजा सब आकार ।
आपा मेटै हरि भजे, तब पावै करतार ॥
गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागौं पाय ।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय ॥
बलिहारी गुरु आपने, घड़ि घड़ि सौ सौ बार ।
मानुष से देवता किया, करत न लागी बार ॥१०॥
बूड़ा था पर ऊबरा, गुरुकी लहरि चमक् ।
बेरा देखा झांझरा, उतरि भया फरक् ॥
पहिले दाता शिष्य भये, तन मन अरप्यो शीश ।

पाछे दाता गुरु भये, नाम दियो बखशीश ॥ १२ ॥
राम नाम के पटतरे, देवे को कछु नाहिं ।
क्या लै गुरु सँतोषिये, हवस रही मनमाहि ॥
निज मन तो नीचा किया, चरण कमल की ठौर ।
कहैं कबीर गुरु देव बिन, नजर न आवै और ॥
मन दिया तिन सब दिया, मनको लार शरीर ।
अब देवे को कछु नहीं, यों कहे दास कबीर ॥
तन मन दिया तो भल किया, शिरका जासी भार ।
कबहूं कहै कि मै दिया, घनी सहैगा मार ॥
गुरु सिकलीगर कीजिये; मनहिं मस्कला देइ ।
मन का मैल छुडाइ के, चित दर्पण करि लेइ ॥
गुरु धोबी शिष कापडा, साबुन सिरजन हार ।
सुरति शिला पर धोइये, निकसै ज्योति अपार ॥
गुरु कुलाल शिष्य कुम्भ हैं, गढ २ काढै खोट ।
अन्तर हाथ सहार दै, बाहर बाहे चोट ॥
ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विश्वास ।

गुरु सेवा ते पाइये, सतगुरु चरण निवास ॥ २० ॥
गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिये अन्ध ।
यहां दुखी संसार में, आगे यम के बन्ध ॥
गुरु को मानुष जानता, चरणामृत सो पानि ।
ते नर नरके जाएगे, जन्म जन्म ह्वै श्वानि ॥
कबीर ते नर अन्ध हैं, गुरु को कहते और ।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥
गुरु हैं बडे गोविंन्द ते, मन में देखु विचार ।
हरि सुमरै सो वार है, गुरु सुमरै सो पार ॥
गुरु सीढी ते ऊतरै, शब्द बिहूना होय ।
ताको काल घसीटि हैं, राखि सकै नहिं कोय ॥
अहं अग्नि दिशि दिन जरै, गुरु सो चाहै मान ।
ताको यम नेवता दियो, होहु हमार मेहमान ॥
गुरु पारस गुरु परस है, चन्दन बास सुबास । ❀
सतगुरु पारस जीवको, दीना मुक्ति निवास ॥

❀ पारस में अरु गुरू में, वड़ो अन्तरो जान ।

गुरु सो भेद जो लीजिये, शीश दीजिये दान।
बहुतक भोंदू बहि गये, राखि जीव अभिमान॥२८॥
गुरु समान दाता नहीं, याचक शिष्य समान।
तीन लोक की सम्पदा, सो गुरु दीना दान॥
गुरू बतावै साधुको, साधु कहै गुरु पूज।
अरस परस की खेल में, भई अगम की सूज॥३०॥
यम गरजे बल बाघ के, कहैं कबीर पुकार।
गुरू कृपा ना होत जो, तौ यम खाता फार॥
अवर्ण वरण अमूर्ति जो, कहौ ताहिं किन पेख।
गुरू दयाते पावई, सुरति निरति करि देख॥
यह धन जो गुरु की अहै, भाग बड़े जिन पाय।
कहै कबीर टोटा नहीं, जब परे तबहि लखाय॥
कह कबीर दर्गाह सो, जेहि उतरी ह्वै भार।
सोइ करै गुरु आइया, झकि २ मरै गंवार॥
पण्डित पढ़ि गुनि पचि मुये, गुरू बिन मिलै न

वह लोहा कंचन करै, यह करै आपु समान॥

ज्ञान। ज्ञान बिना नहि मुक्ति है सत्य शब्द प्रमान ॥
मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाव। मूल नाम गुरु बचन है, सत्य मूल सत भाव ॥ नाम सजीवन गाव, गुरु करि दाया जाहि को। गुरु गोविन्द बताव, गुरु बिन गोविन्द ना मिलै ॥
गुरू गुरू में भेद है, गुरू गुरू में भाव।
गुरू सदा सो बन्दिय, शब्द बतावे दाव ॥
कहै कबीर तजि भ्रम को, नान्हा करिके पीव।
तजि अहं गुरु चरण गहू, यमसो बांचे जीव ॥
कनफुका गुरु देह का, बेहद का गुरु और।
बेहद का गुरु जब मिलै, लहै ठिकाना ठौर ॥ ४० ॥
तीन लोक नौ खण्ड में, गुरु ते बडा न कोय।
करता करै न करि सकै, गुरू करै सो होय ॥ ४१ ॥
❀ ॥ इति गुरु देव को अंग १ ॥ साखी ४१ ॥ ❀

गुरु शिष्य पारख का अंग ॥ २ ॥

गुरु मिला ना शिष्य मिला, दोऊ खेलैं दाव ।
दोऊ बूडै बावरे, चढि पाथर के नाव ॥ १ ॥
जाका गुरु है आंधरा, चेला निघट निरन्ध ।
अन्धे अन्धा ठेलिया, दोऊ कूप परन्ध ॥
जाका गुरु है आंधरा, चेला खरा निरंध ।
अन्धे को अन्धा मिला, परे काल के बन्ध ॥
जानंता पूछी नहीं, पूछि किया नहि गौन ।
अन्धे को अंधा मिला, राह बतावे कौन ॥
माई मूडौ तेहि गुरुकी, जाते भ्रम न जाय ।
आप बूडा मझधार में, चेला दिया बहाय ॥
(आप बुडा चहुं बेद में, चेले दिया बहाय)।
कवीर पूरा गुरु बिना, पूरा शिष्य न होय ।
गुरु लोभी शिष्य लालची, दूनी दाझन होय ॥
पूरा सतगुर ना मिला, रहा अधूरा सिख (शिष्य) ।
स्वांग यती का पहिर कै, घर घर मागै भिख ॥

पूरा सहजै गुण करै, गुण नहि आवै छेह ।
सायर पोषै सर भरै, डांण न मागै मेह ॥ ८ ॥
गुरू किया है देहका, सतगुरु चीन्हा नाहि ।
भवसागर के जाल में, फिरि फिरि गोता खांहि ॥
जागुरुते भय ना मिटै, भ्रान्ति न जिव का जाय ।
गुरु तो ऐसा चाहिये, देवे ब्रह्म बताय ॥ १० ॥
कवीर जानंता बूझिया, पैडा दिया बताय ।
चलते चलते तहां गया, जहां निरंजन राय ॥
बंधे को बंधा मिलै, छूटै कौन उपाय ।
कर सेवा निर्बंध की, पलमें लेत छुडाय ॥
गुरु सिकली गर कीजिये, मनहि मसकला देइ ।
मनके मैल छुडाइके, चित्त दर्पण करिलेइ ॥
झूठे गुरु के पक्षको, तजत न कीजै बार ।
राह न पावै शब्द का, भटकै द्वारहि द्वार ॥
जाका गुरु है अेही. चेला अेही होय ।
कीच कीच के धोवते, दाग न छूटै कोय ॥

गुरू नाम है ज्ञानका, शिष्य सीख ले सोइ ।
ज्ञान मर्याद जानै बिना, गुरु शिष्य न कोइ ॥
शिष्य तो ऐसा चाहिये, गुरुको सब कछु देइ ।
गुरु तो ऐसा चाहिये, शिष्य से कछु नहि लेइ ॥
गुरु पूरा शिष्य सूरा, बाग मोर रन पैठ ।
सत सुकृत को चीन्ह के, एक तख्त चढि बैठ ॥१८॥
इति गुरू शिष्य पारख को अंग ॥ ४१ + १८=५९



❀ ॥ सतगुरू का अंग ॥ ❀

सतगुरु समान को सगा, साधु समान को दात ।
हरि समान को हीतु है, हरिजन समको जात ॥१॥
सतगुरु को महिमा अनंत, अनंत किया उपकार ।
लोचन अनन्त उघारिया, अनन्त दिखावन हार ॥
सब जग भर्मा यों फिरै, ज्यों रामा का रोज ।
सतगुरु सो सुधि भई, पाया हरिका खोज ॥

थापन पाई थिति भई, सतगुर दीना धीर ।
कबीर हीरा बनीजिया, मान सरोवर तीर ॥ ४ ॥
थिति पाय मन थिर भया, सतगुरु कीन्ह सहाय ।
और कथा मन रुचै नहीं, हृदय रमिता राय ॥
चेतन चौकी बैठि करि, सतगुरु दीनी धीर ।
निर्भय ह्वै निः शंक भजु, केवल कहैं कबीर ॥
बहे बहाये जातथे, लोक बेद के साथ ।
पैड़ा में सतगुरु मिला, दीपक दीन्हा हाथ ॥
दीपक दीना तेल भरी, बाती दई अघट्ट ।
पूरा किया बिसाहेना, बहुरि न आवै हट्ट ॥
चौपड़ माड़ी चौहटे, सारी किया शरीर ।
सतगुरु दाव बताइया, खेलैं दास कबीर ॥
सतगुरु हमसू रीझि के, एक कहा पर संग ।
बरषा बादल प्रेमका, भीजि गया सब अंग ॥१०॥
सतगुरु के उपदेश का, सुनिया एक बिचार ।
जो सतगुरु मिलता नहीं, जाता यम के द्वार ॥

यमद्वारे पर दूत सब, करते खींचा तानि ।
तिनते कबहुं न छूटता, फिरता चारो खानि ॥१२॥
चारो खानि में भ्रमता, कबहुं न लहता पार ।
सो तो फेरा मिटिगया, सतगुरु का उपकार ॥
सतगुरु के सिद्‌के किया, दिल अपना कै सांच ।
कलियुग मोसे लड़ि पड़ा, मोहकिम मेरा बांच ॥
सतगुरु सांचा सूरमा, शब्द जो बाह्या ऐक ।
लागत ही भय मिटि गया, पड़ा कलेजे छेक ॥
सतगुरु शब्द को बाण ले, बाहन लागा तीर ।
एक जो बाहा प्रेम सूं, भीतर बेधा शरीर ॥
सतगुरु बाह्या बाण भरी, धरकर सूधी मूठ ।
अंग उघाड़े लागिया, गया धुवासूं फूठ ॥
सतगुरु मारा बाण भरि, डोला नहीं शरीर ।
कहु चुम्बक क्या करि सकै, सुख लागे वाहि तीर ॥
लागी गांसी सुख भया, मरै न जीवैं कोय ।
कहैं कबीर सो अमर भये, जीवत मृतक होय ॥

हंसै न बोलै उन मुनी; चंचल मेल्या मार ।
कह कबीर अंतर बेधिया, सतगुरु का हाथियार ॥
कबीर गुंगा हुआ बावरा, बहिरा हुआ कान ।
पांयन से पगुला हुआ, सतगुरु मारा बान ॥२१॥
सतगुरु मेरा शूरमा; भेदा सकल शरीर ।
बाण दुवासूं फूटिया, क्यों जीवै दास कबीर ॥
सतगुरु सांचां शूरमा, नख शिख मारा पूर ।
बाहर घाव न दीसई, भीतर चकनाचूर ॥
सतगुरु मारा बाण भरी, टूटि गया सब जेव ।
कहुं आपा कहुं आपदा, तसबीः कहूं कितेव ॥
सतगुरु मारा बाण भरि, शब्द सुरंगी बान ।
मेरा मारा फिर जिवै, हाथ न धरूं कमान ॥
सतगुरु मारा बाण भरि; निरखि २ निज ठौर ।
राम अलख में रमि रहा; चित्त न आवै और ॥
सतगुरु मारा प्रेम सूं, रही कटारी टूट ।
जैसी अनी न सालही; तैसी सालै मूट ॥

मान बडाई ऊरमी, ये जग का व्यवहार।
दास गरीबी बन्दगी, सतगुरु का उपकार ॥२८॥
दिलही में दीदार है, बाद वहै संसार।
सतगुरु शब्द का मसकला; मुझै दिखावनहार ॥
दीसै सो विनाशि हैं; नाम धरे सो जाय।
कह कवीर सोइ सत्य है; सतगुरु दियो बताय॥३०॥
(कबीर सोइ तत्व गहो; सतगुरु दियो बताय)
कुदरत पाई खवर सों; सतगुर दिया वताय।
भवँर बिलम्बे कमल से; अब कैसे उडिजाय ॥
राम नाम छाडूं नहीं; सतगुर सीख दिया।
अविनाशी को परसि के, आतम अमर भया ॥
चौसठ दीवा जोय के, चौदह चन्दा मांहि।
तेहि घर कैसा चांदना, जेहि घर सतगुरु नाहिं ॥
चित चोखा मन मसकला, बुद्धि उत्तम मति धीर।
सो ह्वां हो बिचरई, जो सतगुर मिलै कवीर ॥
कोटिक चन्दा ऊगवे, सूरज कोटि हजार।

सतगुरु मिल्या वाहिरे, दीसत घोर अँधार ॥३५॥
सतगुरु मोहि निवाजिया, दीना अमर बोल ।
शीतल छाया सुगम फल, हंसा करै कलोल ॥
सतगुरु सत्य कबीर है, संकट परा हजीर ।
हाथ जोड़ विनती करूं, भवसागर के तीर ॥
चित्त चोका दिल निर्मला, दयावन्त गंभीर ।
सो धोखा विच क्यों रहै, सतगुरु मिलै कबीर ॥
ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विश्वास ।
सतगुरु मिलि एकै भया, रही न दूजी आस ॥
सतगुरु पारस के शिला, देखो सोच बिचार ।
आई पड़ोसिन लै चली, दियो दिया संवार ॥४०॥
जीव अधम कुटिल हैं, कबहूं नाहिं पतिआय ।
ताका औगुन मेटिके, सतगुरु होत सहाय ॥
सतगुरू बड़े सराफ हैं, परखे खरा अरु खोट ।
भवसागर ते निकारि कै, राखै अपनी ओट ॥
सतगुरू शब्द जहाज़ है, कोइ कोइ पावै भेद ।

समुद्र बुन्द एकै भया, किसका करूं निषेद ॥
सतगुरु महल बनाइया, ज्ञान गिलावा दीन।
दूर देखन के कारणे, शब्द झरोखा कीन ॥
सतगुरु शब्द उलंघि के, जो कोइ शिष जाय।
जहां जाय तहं काल है, कहैं कवीर समझाय ॥
सतगुरु बड़े जहाज हैं, जो कोइ बैठे आय।
पार उतारें और को, अपनो पारस लाय ॥
विन सतगुर बांचे नहीं, फिर बूडे भव मांहि।
भव सागर के त्रास में, सतगुरु पकडे बांहि ॥
सतगुरु मिला तो क्या भया, जो मन पाडी भोल।
पास कपडा ढाके नहीं, क्या करे वपुरी चोल ॥
सब जग मुआ विषधर धरे, कहैं कवीर विचार।
जो सतगुर को पाइया, सो जन उतरे पार ॥ ४९॥

❀ ॥ सोरठा ॥ ❀

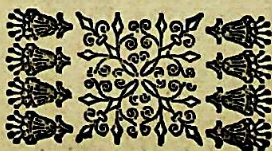
बिनु सतगुरु उपदेश, सुर नर मुनि नहि निस्तरे।
ब्रह्मा बिष्णु महेश, और सकल जिव को गने ॥५०॥

कोटिन पढि गुनि पचि मुआ. योग यज्ञ तप लाय।
बिनु सतगुरु पावे नहीं, कोटिन करै उपाय ॥५१॥
करहु छोड कुल लाज, जो सतगुरु उपदेश है।
होय तबै जिव काज, निश्चय के प्रतीति कर ॥
अच्छर आदि जगत में, जाकर सब विस्तार।
सतगुरु दया सो पाइये, सतनाम निज सार ॥
सतगुरु खोजो सन्त, जीव काज जो चाहहू।
मेटो भव को अन्त, आवा गवन निवारहू ॥
विनवै दोउ कर जोर, सतगुरु बन्दी छोर है।
पावै नाम के डोर, जरा मरण भव काल मिटै ॥
सत नाम निज सोय, जो सतगुरु दाया करै।
और झूठ सब होय, काहे को भरमत फिरै ॥
सतगुरु शरन न आवहीं, फिरि २ होय अकाज।
जीव खोय सब जांयगे, काल तिहू पुर राज ॥
जो सतनाम समाय, सतगुरु के परतीति कर।
यम को अमल मिटाय, हंस जाय सतलोक कहँ ॥

तत्व दर्शी जोइ होय, सो सतसार विचारई ।
पावै तत्व बिलोय, सतगुरु का चेला सोई ॥ ५९ ॥
जग भौसागर माहि, कहो कैसे बूडत तरे ।
गहै नाम सतगुरु काहि, जो जल थल रच्छा करे ॥६०
निज मत सतगुरु पास, जेहि पाय सब सुधि मिलै ।
जगते रहे उदास, ता कहँ क्यों नहिं खोजिये ॥
यह सतगुरु उपदेश है, जो मानै परतीति ।
कर्म भर्म सब त्यागि के, चलै सो भव जल जीति ॥
सतगुरु तो सत भाव है, जो अस भेद बताय ।
धन्य शिष्य धन्य भाग तेहि, जो ऐसी सुधि पाय ॥

❀ ॥ इति सतगुरु का अंग ॥३॥ ❀

॥ ५९+६३=१२२ साखी ॥



॥ १ अथ गुरु मुख काअंग ॥४॥

गुरु मुख गुरु चितवत रहे, जैंसे मणी भुवंग ।
कहैं कवीर बिसरे नहीं, यह गुरु मुख को अंग ॥१॥

जगत में दो भांतिके पुरुष होतेहैं एक गुरु मुख, दूसरा मन मुख ॥ १ गुरु मुख वह है—जो अपने मनको सतगुरु सत् पुरुषों के आज्ञा रीति भांति चाल व्यवहार से चलावे अर्थात् उनकी आज्ञा और रीति यद्यपि प्रत्यक्ष में दुखदाई भी हो परंतु उसके अंतफल को सुख दायक समझ के जैसे होसके वैसे मनको उनके अनुसार रक्खै ॥ इसमें कुछ सन्देह नहीं कि सत्पुरुषों के रीति उपदेश पर चलने मे मन प्रथम कष्ट को प्राप्त हो स्वेच्छाचारी बनना चाहेगा, परन्तु बलकरके, मनको स्वतंत्रता से रोक उसी तरफ लगावे फिरतो थोड़ेही अभ्यास से मन चंचलता को छोड़ उसी में परवृत हो कर पूर्ण गुरुमुखता को धारण करेगा ॥

गुरु मुख विना विचार नहिं करई ।
जो कछु करै तासे नहिं टरई ॥

मन मत दो प्रकार धरम है, ग्रही अरु साध ।
दोहुन को लाज़िम है, गुरु मुख होहु अवाद ॥

परन्तु गुरु किसे कहते हैं यह भी सुनो कि जो शिष्य के शंकाओं को

गुरुमुख गुरु चितवत रहे, जैसे शाह दिवान ।
और कवीर नाहिं देखता, है वाही को ध्यान ॥
गुरु मुख गुरु आज्ञा से, छोड़ि दे सव काम ।
कहै कवीर गुरु देवको, तुरत करै परणाम ॥
उलटे सुलटे बचन को, शिष्य न मानै दुःख ।
कहै कवीर संसार में, सो कहिय गुरु मुख ॥ ४ ॥

॥ इति गुरुमुख का अंग ॥ ४ ॥

॥ १२२+४=१२६ साखी ॥

❁ ॥ १ अथ मन मुख का अंग ॥५॥ ❁

सेवक मुखहि कहावै, सेवा में दृढ़ नाहि ।
कहै कवीर सो सेवका; लख चौरासी मांहि ॥ १ ॥

निवृत कर उसको उत्तम मार्ग पर लगाताहो तथा भयानक रोचक झूठे बखेड़ों में फंसाय केवल कान फूंक पूजा सालीना से काम न रखता हो ॥

१ मन मुख उसे कहते हैं कि जो सतगुरु और महात्मा सतपुरुषों की बात कान न धर केवल मनके कहनेपर चलता है और सतगुरु

फल कारण सेवा करे, निसदिन चाहे राम ।
कहै कबीर सेवक नहीं, चाहै चौगुन दाम ॥
सेवक स्वामी एक मत, जो मति से मति मिलजाय।
चतुराई रीझै नहीं, रीझै मनके भाय ॥
सतगुरु शब्द उलंधि के, जो कोइ शिष्य जाय ।
जहां जाय तहं काल है, कहैं कबीर समझाय ॥
गुरु सो करे कपट चतुराई ।
सो हंसा भव भरमे आई ॥
जो जन गुरु की निन्दा करई ।
शूकर स्वान गर्भ में परई ॥ ५ ॥

॥ इति मनमुख का अंग ॥५॥

१२६+५=१३१ साखी

की कृपा से विवेक उसे उन कर्मों से रोकता है तौ भी उस पर ध्यान न देकर मन्द कर्मों में प्रवृत होही जाता हैं । मन्द भोगों में प्रवृत रहने वालों को यदि वे भोग पहले कुछ काल तक अमृत के समान जान पड़ते हैं परन्तु पीछे से वही अमृत बिष रूप हो बिकराल

❀ ॥ अथ निगुरा का अंग ॥ ६ ॥ ❀

नर निगुरा के तीन गुण, भोपा भरडा भांड ।
गत राडा की सेज में, कहां पलापै रांड ॥१॥
गुरु बिन माला फेरता, गुरु बिनु करता दान ।
गुरु बिन सब निष्फल गया, बूझो वेद पुराण ॥
जो निगुरा सुमरन करै, दिनमें सौ सौ बार ।
नगर नायका सतकरै, जरै कौन की लार ॥
गर्भ योगीश्वर गुरु बिना, लागा हरि के सेव ।
कहै कबीर बैकुण्ठ से, फेर दिया शुकदेव ॥

दुख रूपी राक्षस के स्वरूप को धारण कर पूर्ण नर्क का अनुभव कराते हैं ॥ और मन मुख पुरुष इन दुखों को देखता या अनुभव करता हुआ भी अपने मन के वश हुआ बारम्बार विष्याशक्ती को प्राप्त होताहै मनसुख पुरुष को कुछ लज्जा, भय आदिक भी नहीं होते कभी त्यागी, कभी गृही, कभी चोर, कभी साधु, कभी यती, कभी व्यभिचारी, अनेक स्वागों को धारण करता । और अपने को बड़ा बुद्धिमान, न्यायी, धीर, साधु आदि विशेषणों से सम्पन्न जान अहंकारमे डूबा रहकर दूँसराकी निन्दा असूया कियाकरता है.

जनक बिदेही गुरु किया, लागा हरिके सेव ।
कहै कबीर बैकुण्ठ में, उलटि मिला शुकदेव ॥
पूरा को पूरा मिलै, पूरा पड़ै सो दाव ।
निगुरा तो उभर चलै, जब तब चलै कुदाव ॥
जो कामिनि परदे रहै, सुनै न गुरु मुख बात ।
होय जगत में कूकरी, फिरै उघारे गात ॥७॥

॥ इति निगुरा का अंग ॥ ६ ॥

॥ १३१+७=१३८ साखी ॥

❀ ॥ अथ विनती (प्रार्थना) का अंग ॥७॥ ❀

विनवत हौं करजोरि के, सुनियो कृपा निधान ।
साधु संगति सुख दीजियो, दया गरीबी दान ॥
अबकी जो सतगुरु मिलै, सब दुख आंसू रोय ।
चरणों ऊपर सर धरूं, कहूं जो कहना होय ॥
सुरति करो मोरे सांइयां, हमहैं भवजल मांहि ।
आपेही बहि जांयगे, जो नहिं पकड़ो बांहि ॥
क्या मुख लै विनती करूं, लाज आवत है मोहि ।

तुम देखत औगुन किये, कैसे भाऊं तोहि ॥ ४ ॥
सतगुरु तोहि विसारि के, किसके शरणे जांय।
शिव विरंचि मुनि नारदा, हृदय नाहिं समाय ॥
मै अपराधी जनम का, नखशिख भरा विकार।
तुम दाता दुख भंजना, मेरी करो उबार ॥
अवगुण मेरे बापजी, बखशो गरीब निवाज।
जो हौं पूत कपूत हौं, तऊ पिता को लाज ॥
अवगुण किये तो बहु किये, करत न मानी हार।
भावे बंदा बखूशिये, भावे गर्दन मार ॥
कबीर भूल बिगाडियां, करि २ मैला चित्त।
साहेब गरुआ चाहिये, नफर बिगाडे नित्त ॥
साईं तेरे बहुत गुण, अवगुण कोई नाहिं।
जो दिल खोजूं आपना, सब अवगुण मोहिमाहिं ॥
साहेब तुम जनि बीसरो, लाख लोग लागि जांहि।
हमसे तुमरे बहुत हैं, तुम सम हमरे नांहि ॥ ११ ॥
अवसर बीता अल्प तन, पीव रहा परदेश।

कलंक उतारो राम जी, भानो भरम संदेश ॥
कर जोडे बिनती करूं, भवसागर आपार।
बन्दा ऊपर मिहर करी, आवा गमन निवार ॥
अन्तर्यामी एक तू, आतम के आधार।
जो तुम छोडो साथ को, कौन उतारे पार ॥
भव सागर भारा महा, गहिरा अगम अगाह।
तुम दयाल दाया करो, तब पाऊं कछु थाह ॥
साहेब तुम्ही दयाल हो, तुम लग मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को, सूझै ओर न ठौर ॥
साईं तेरा कुछ नहीं, मेरा होय अकाज।
बिरद तुम्हारे लाज की, शरण परे की लाज ॥
मेरा मन जो तोहि से, यों जो तेरा होय।
अहिरण ताता लोह ज्यों, सन्धि लखै नहि कोय ॥
मेरा मन जो तुझ से, तेरा मन कहिं और।
कहै कबीर कैसे निबहै, एक चित्त दुइ ठौर ॥

मुझ अवगुण तुझ गुण घणा, तुझ गुण अवगुण मुझ।
जो मैं बिसरूं तुझको, तू नाहिं बिसरो तुझ ॥२०॥
तुझ विसारा सरै नहीं, किस के शरणें जांहि।
शिव विरंचि मुनि नारदा, सो न हृदय समाहि ॥
मैं अपराधी जन्म का, नख शिख भरा विकार।
दया करो तुम राम जी, तो मैं उतरूं पार ॥
साईं मेरा सावधान है, मैही भया अचेत।
मन बच कर्म न हरि भजा, ताते निष्फल हेत ॥
मन प्रतीति ना प्रेम रस, ना कोइ तन में ढंग।
ना जानूं उस पीव से, क्योंकर रहसी रंग ॥
जिनको साईं रँग दिया, कबहुं न होय कुरंग।
दिन २ बाणी आगरी, चढै सवाया रंग ॥
साईं जो मिलैंगे, पूछैगे कुशलात।
आदि अन्त की सब कहूं, उर अन्तर की वात ॥
कबीर तुमतो गारुआ, हलकी अपनी चाल

रंग कुरंगी रंगिया, किया और लगवार ॥ २७ ॥

॥ इति बिनती का अंग ॥७॥

१३८+२७=१६५ साखी

❀ ॥ अथ स्मरण को अंग॥ ८ ॥ ❀

स्मरण मारग सहज का, सतगुरु दिया बताय।
सांस उस्वांस संभालता, यक दिन मिलसी आय॥
माला स्वांस उस्वांस को, फेरैं कोइ निजदास।
चौरासी भरमें नहीं, कटे कर्म की फांस ॥ २ ॥
मन माला तन मेखला, भव की करी मभूत।
राम मिला सब देखता, सो योगी अवधूत॥
अजपा स्मरण घट विषै, दीना सिरजन हार।
रण रोही संग्राम में, रहगई मारा मार ॥
बाहर क्या दिखलाइये, अन्तर जपिये राम।
कैसा मोहिला खल्क सूं, सरै धनी को काम ॥
सतगुरु का सारा नहीं; शब्द न लागा अंग।
कोरा रहिगौं सीदड़ा, सदा तेल के संग ॥

कबीर माला काठकी, बहुत यतन का फेरु।
माला फेरो स्वांस की, जामें गांट न मेरु ॥ ७ ॥
स्वासा सुमरण होत है, ताहि न लागै बार।
पल पल बन्दगी साधना, देखो दृष्टि पसार ॥
ओठ कण्ठ हालै नहीं, जिह्वा नहीं उचार।
गुप्त बस्तु को जो लखै, सोई हंस हमार ॥
शून्य मंडल में घर किया, बाजा शब्द रसाल।
रोम रोम दीपक भया, प्रकटे दीन दयाल ॥ १० ॥
तूतू करता तू भया, मुझमें रही न हूं।
बारी तेरे नाम की, जित देखूं तित तूं ॥
तूतू करता तू मिला, तुझ में रहा समाय।
तुमही माही मिलि रहा, अब मन अन्ते न जाय ॥
पाच सखी पिव पिव करे, छट्ठा सुमरे मन।
आई सुरति कबीर की, पाया नाम रतन ॥
चिंता तो यक नामकी, और न चितवै दास।
जो कुछ चितवै नाम विनु, सोई काल की फांस ॥

पहिले बुरा कमाय के, बांधा विषको पोट ।
कोटि करम क्षण में कटे, आया हरिके ओट ।१५।
कोटि कर्म फल पलकमें, रंचक आवै नाम ।
अनेक युग जो पुण्य करै, नहीं नाम बिन ठाम ॥
कवीर हरिके नाम सूं, कोटि विघ्न टरि जाय ।
राई समान वसंदरा, केता काठ जलाय ॥
होय नामजो एक रती, पाप रती हजार ।
अर्द्ध नाम घट संचरै, जारि करै सब छार ॥
सत्य नाम कूं खोजिले, जाते अग्नि बुझाय ।
बिना नाम बांचे नहीं, धरमराय धरि खाय ॥
गुण गाया गुण ना कटै, रटै न राम बियोग ।
आहि निशिहरि ध्यावै नहीं, क्योंपावै दुर्लभ योग॥२०॥
कवीर कठिनाई खरी, लेता हरि को नाम ।
सूली ऊपर सेज है, गिरै तो नाहीं ठाम ॥
कवीर रामहि ध्याइले, मन करि प्रेम प्रतीति ।
हरि सागर जनि बीसरे, छीलर देखु अनीति ॥

कवीर राम रिझायले, मनही में गुण गाय।
फूटा नग ज्यो जोडि मन, सन्धे सन्धि मिलाय॥
चित्त आग जो चमकिया, चहु दिशि लागी बाय।
हरि सुमिरण हाथे घड़ा, वेगी लेहु बुझाय॥
साच विना सुमिरण नहीं, भेदविन भक्ति न सोय।
पारश में परदा रहा, लोह किमि कंचन होय॥
नाम विसारे देह कूं, जीव दशा सब जाय।
जबही छोडे नाम कूं, तबही लागे धाय॥
कबीर सुमिरण सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंत मध्य सोधिया, दूजा देखा काल॥
कंचन केवल हरि भजन, दूजा कांच कथीर।
झूठा आल जंजाल तजि, पकडो सांच कवीर॥
माला मोसे लड़ि पड़ा; क्या फेरत हौ मोहि।
मनका माला फेरिले; हरि मिलावै तोहि॥
माला फेरत युग गया; पाया न मनका फेर।
करका मणिका छांड़ि के; मनका मणिका फेर॥

माला जपूं न कर जपूं, मुख से कहूं न राम।
हरि मेरा सुमिरण करै, मैं पाऊं विश्राम ॥ ३१ ॥
(मेरा हरि मोको जपै, मैं पाऊं विश्राम)
राम नाम सतगुरु दई, पवन सुरति सो पोय।
बिन जिभ्या निशिदिन जपों, ब्रह्म जाप यों होय ॥
नाम लिया जिन सब लिया, सकल वेद का भेद।
बिना नाम नरके पडा, पढ़ता चारू वेद ॥
ज्ञान कथी बक् बक् मरै; कहां करै उपाधि।
सतगुरु हमसों यों कहा; सुमिरण करो समाधि ॥
राम सुमिरणी नाम की; मेरा मन मशगूल।
छबि लागे निरखत रहौं; मिटि गयो संशय शूल ॥
राम नाम निज औषधी; सतगुरु दई बताय।
औषध खाय रुपचि रहै; ताको भेदन जाय ॥
यह औषध आगे लगी; केतिक उधरी देह।
कोइक फेर कुपथ तणा, ना तरि औषध येह ॥
पारस रूपी नाम है, लोह रूप संसार।

पारश पाया पुरुष का, परखि २ टकसार ॥ ३८ ॥
भजन भरोसे नाम के, मगहर तज्यो शरीर।
अविनाशी के सेज पर, विलसे दास कबीर ॥



आदि नाम निज सार है, बूझि लेहु हो हंस।
जिन जान्यो निज नाम को, अमर भयो सो बंस॥
आदि नाम निज मूल है, और मंत्र सब डार।
कहै कबीर निज नाम बिन, बूडि मुआ संसार॥४१॥
आदि नाम को खोजहू, जो है मुक्तिक मूल।
ये जियरा जप लीजियो, भर्म मता मतभूल ॥
कहै कबीर निज नाम बिन, मिथ्या जन्म गवांय।
निर्भय मुक्ति निः अक्षरा, गुरु विन कबहुं न पाय ॥
पूंजी मेरो नाम है, जाते सदा निहाल।
कबीर गरजै पुरुष बल, चोरी करै न काल ॥
जाके दिल अनुराग है, पावेगा नर सोय।

अनुराग विन नहिं पाइये, बूड़ि मरै सब कोय ॥
कबीर हमारे है नाम बल, सात द्वीप नौ खण्ड ।
यम डरपे सब भय करै, गाजि रहै ब्रह्मण्ड ॥ ४६ ॥
काल फिरे शिर ऊपरे, काल नजर न आय ।
कहै कबीर गुरु शब्द गहू, यमसे जीव बचाय ॥
काल फिरै शिर संधै, हाथे करै कमान ।
कहै कबीर गहि नाम निज, छांडु मान अभिमान ॥
आदि नाम निज पुरुषकी, सुनतहि तजु अभिमान ।
कहैं कबीर सुनुसंत हो, तजो नरक की खान ॥
कोटि नाम संसार में, ताते मुक्ति न होय ।
आदि नाम गुप्त जापजो, बूझै बिरला कोय ॥५०॥
सोइ नाम संसार मो, उदित अमोल अपार ।
ताबिन पार न पावई, बूड़ि मुये संसार ॥
जैसे फन पति मंत्र देखि, राखै फनहि सिकोरि ।
तैसे बीरा नामते, काल रहै मुख मोरि ॥
जो जन होइहैं जौहरी, सो धन लिहै बिलगाय ।

सोहं सोहं जपि मुये मिथ्या जन्म गंवाय ॥ ५३ ॥
साखी पद संसार में, कहे सुने को कीन्ह।
चिट्ठी आई मूलते, सो धन लैहे चीन्ह ॥



सब को नाम सुनावहू जो आवे तुव पास।
शब्द हमारो सत्य है, दृढ़ राखो बिश्वास ॥
होय विवेकी शब्द का, जाय मिलै परिवार।
नाम गहै सो पहुंचै, मानहु कहा हमार ॥
आदि नाम पारस अहै, मनहै मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह ॥
सुरति समावे नाम सो, जगसे रहै उदास।
कहै कबीर गुरु चरण में, दृढ़ राखै बिश्वास ॥
यहि विधि करै किसानिया, पोता तलब न होय।
भक्ति मिलै कोइ बीरला, दाम देत नहिं सोय ॥
मालिक हमारा नाम है, दरगाही प्रमान।

शील संतोष आराम भौ, छाड्यो सकल अभिमान ६०
यहि अवसर नहि पाइहो, धरो नाम कडिहार।
भवसागर तरि जावतब, पलक न लागै बार॥
आदि नाम बीरा अहै, जीव सकल लेव बूझि।
अमरावै सतलोक लै, यम नहि पावै सूझि॥
या धन सोई पाइ है, ज्ञान दृष्टि जेहि होइ।
ज्ञान बिना नहि पावई, कोटि करै जो कोय॥
ज्ञान दीप प्रकाश करि, भीतर भवन जराय।
(तहां) बैठे सुमरे पुरुषको, सहज समाधि लगाय॥
अक्षय बृक्ष के डोर गहै, सो सतनाम समाय।
सत्य शब्द प्रमाण है, सत्यलोक कहं जाय॥
एक नाम को जानि के, मेटै कर्म को अंक।
तबही सो सचु पाइहै, जब जिव होय निशंक॥
कोइ न यम सो बाचिया, नाम बिना धरिखाय।
जे जन बिरही नामके, ताको देखि डेराय॥६७॥
कर्म करै देही धरै, अरु फिरि फिरि पछताय।

बिना नाम बांचे नहीं, जिव यमरा लै जाय ॥ ६८ ॥
नाम गहै धन धाम तजि, नर नारी जो कोइ ।
अविचल महिमा ना बसै, आविचल आपै होइ ॥

❀ ॥ सोरठा ❀ ॥

सतगुरु का उपदेश, सत्य नाम निज सार है ।
यहि निज मुक्ति संदेश, सुनो संत सत भाव से ॥
तरे जो नाम समाय, बिन थिति जग बूढ़िया ।
उबरे एक उपाय, सतगुरु के उपदेश गहू ॥
क्यों छूटे यमजाल, बहु बन्धन जिव बांधिया ।
काटै दीनदयाल, कर्म फन्द यक नामसो ॥
मिटै कर्म को अंक, जब सतनाम ध्यावही ।
होय जीव निः शंक, सत्य बचन सतगुरु कहे ॥
छोड़हु यमके फन्द, जेहि फन्दें जग फंदिया ।
कटे तो होय आनन्द, नाम खड्ग सतगुरु दिये ॥
तजै काक की देह, हंस दशा की सुरति पर ।
मुक्ति संदेशा एह, सतनाम प्रमाण अस ॥ ७५ ॥

सतनाम विश्वास, कर्म भर्म सब परि हरै ।
सतगुरु पुरवै आस, जो निराश आशा करै ॥ ७६ ॥

॥ इति नाम स्मरण का अंग ॥ ८ ॥

१६५ + ७६ = २४१ साखी ॥

॥ अथ शब्द कुशब्द का अंग ॥ ९ ॥

शब्द शब्द बहु अन्तरै, सार शब्द मथि लीजै ।
कहकबीर जहं सारशब्द नाहि, धृग जीवनसो जीजै।
शब्द हमारा आदि का, पलपल करहू याद ।
अंत फलेगी माहली, ऊपर की सब बाद ॥ २ ॥
शब्द हमारा आदिका, शब्दे पैठा जीव ।
फूल रहन की टोकरी, घोरे खाया घीव ॥
शब्द हमारा तूशब्दका, सुनि मति जाहु सरक्खि।
जो चाहो निज तत्व को, शब्दे लेहु परक्खि ॥

वचन बसावहु पारखी, बीजक है सो नाम ।
अक्षर अक्षर गुरु से पढ़ो, संशय मिटवहु तमाम ॥
॥ पंच ग्रंथी के टकसार से ॥

सांचा शब्द कवीर का, हृदया देखु बिचारि ।
चितदै समुझै मोहि नहीं, कहत भयल युग चारि ॥
बलिहारी वहि दूध की, जामे निकसत घींव ।
आधी साखी कवीर की, चार वेद को जीव ॥९५॥
शब्द अहै गाहक नहीं, बस्तु सो गुरुआ मोल ।
बिना दाम को मानवा, फिरै सो डांवां डोल ॥
चोट सुहेली शब्द की, पडता लेइ उस्वास ।
चोट सहै जो शब्द की, तासु गुरु मैं दास ॥
खोदन तो धरती सहै, बाट सहै बनराय ।
शब्द कुशब्द साधू सहै, और पै सहा न जाय ॥
यह मन तो शीतल भया, जब उपजा ब्रह्म ज्ञान ।
जेहि बसन्दर जग जरा, सो फिरि उदक समान ॥
शीतलता तब जानिये, सहजै रहै समाय ।
पच्छ छाडि निर्पच्छ रहै, सब्द ते दुख न खाय ॥११॥
कवीर शब्द शरीर में, बिन गुन बाजै तांति ।
बाहर भीतर रमि रह्या; ताते छुटी भ्रांति ॥

सत संतोषी सावधान, शब्दहि भेद विचार ।
सतगुरु के प्रसाद ते, सहज शील मतसार ॥ १३ ॥
कबीर जिन शर बेधिया, शर गुण सीगी नाहि ।
लागी चोट जो शब्द की, करक कालजा मांहि ॥
सायर माही शरगया, मच्छी काया सोय ।
सो मच्छी तरुवर चढी, विरला बूझै कोय ॥
पंखी उडानी गगन को, ऊड़ि चली असमान ।
जेहि शर मण्डल भेदिया, सो शर लागा कान ॥
लागी लागी क्या करै, लागी नहीं लगार ।
लागी तबहीं जानिये, निकासि जाय दुइ पार ॥
शब्दे मारा मरि गया, शब्दहि छोड़ा राज ।
जिन यह शब्द विवेकिया, तिनका सरिया काज ॥
बीज़क बतावै वित्त को, जो वित्त गुप्ता होइ ।
शब्द बतावै ब्रह्म (जीव) को; चीन्है विरला कोइ ॥
शब्द कहै सो कीजिये, गुरुआ बडे लबार ।
अपने अपने लोभ कूं, ठौर ठौर बट पार ॥ २० ॥

शब्द न करे मुलाहिजा, शब्द फिरै चौधार ।
आप आप जब चीन्हिया, गुरु शिष्य एक बिहार ॥
शब्द बिना सुरति आंधरी, ना जानूं कहं जाय ।
द्वार न पावै शब्द का, फिरि २ भटका खाय ॥२२॥
एक शब्द गुरुदेव का, जाका अनन्त विचार ।
थाके मुनि जन पण्डिता, वेद न पावै पार ॥
मैं कुलका कोतवालहूं, शब्द हमार अधार ।
जो या शब्द को मानहीं, सो जन उतरै पार ॥
रैन समाना भानु में, भानु अकाशै मांहि ।
अकाश समाना शब्द में, शब्द परे कछु नाहि ॥
खोजी होय जो शब्द का, धन धन संत है सोइ ।
कहै कवीर शब्दै गहै, कबहूं न जाय बिगोइ ॥
सीखै सुनै विचार लै, ताहि शब्द सुख देइ ।
बिना समझ शब्दै गहै, कछू न लाहा लेइ ॥
टीला टिली ढहाय करि, फोरि करै मैंदान ।
सफन सफा करता चलै, सोई शब्द निर्वान ॥

धोखे सब जग पचि मुआ, नहिं पावै थिर ज्ञान।
सतगुरु शब्द पुकारिया, बाहिरा सुनै न कान ॥२९॥
अच्चर आदि जगत में, जाका सब विस्तार।
सतगुरु दया सो पाइये, सत नाम निजसार ॥३०॥
रैनि तिमिरि नासत भयो, जबहि गगन उगाय।
सार शब्द के जानते, कर्म भर्म मिटि जाय ॥
यंत्र मंत्र सब झूठ है, मत भरमो जगकोय।
सार शब्द जानै बिना, कागा हंस न होय ॥
अच्चय होय अच्चर गहै, अक्षर है उपदेश।
अच्चय डोर चढ़ जाय जिव, अक्षय राज के देश ॥
सत शब्द निज जानिके, जिन्ह कीन्हा परतीति।
काक कुमति तजि हंस भये, चले सो भवजल जीत ॥
बीज तेहि न्यारा रहै, बिरला पावै भेद।
काहे को जप तप करे, कथे शास्त्र वो बेद ॥
शब्द खोजि मन बश करै, सहज योग है येहि।
सत्य शब्द निज सार है, यहतो झूठी देहि ॥

शब्द सार जानै बिना, जिव परलय तर जाय।
काया माया थिर नहीं, शब्द लेहु अर्थाय॥ ३७॥
कर्म फन्द जग फान्दिया, जपतप पूजा ध्यान।
जेहि शब्द ते मुक्ति होय, सो न परे पहिचान॥
सतयुग त्रेता द्वापरा, याहि कलियुग अनुमान।
सार शब्द यक सांच है, और झूठ सब ज्ञान॥
थिति शब्द जानै नहीं, सबै ग्रासै काल।
भर्म तजै ना थिति भजै, क्या छूटै भ्रमजाल॥४०॥
सत्य शब्द निज सत्त है, यहतो झूठी देहि।
दर्शन देखो मांजि के, दर्पण मेलन येहि॥
शब्द खोज निज योग है, यह कहिय विस्तार।
सतगुरु सत्य पुकारिया, करनी करै सो सार॥
अगम अगोचर पैठि के, देखो तत्व विलोय।
बाणी सो निर्बाण है, समरथ सांचा सोय॥
छाप जानि मनको गहै, शब्द किये उचार।
उलटा जब सीधा करै, तब देखै निजसार॥

पृथ्वी आप तेज नहीं, नहीं वायु आकाश ।
अनल पक्ष तहां होय रहे, सत्य शब्द प्रकाश ॥
सार शब्द परतीति करै, सो सुकृत को अंश ।
देह दशा जब बीसरे, सो कहिय निज हंस ॥
त्रिविधि रूपमें जग ठगे, चौथे आप कहाय ।
सत्य शब्द जानै विना, सब जग परलय जाय ॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु शब्द प्रमाण, अनहद बाणी ऊचरे ।
और झूठ सब ज्ञान, कहैं कवीर बिचारि के ॥४॥
ज्ञानी सुनहु संदेश, शब्द बिबेकी पेखिया ।
कह्यो मुक्ति पुर देश, तीन लोक के बाहिरे ॥
मन कहं गगन समाय, धुनि सुनिसुनि के मगन ह्वै ।
नहि आवै नहि जाय, शून्य शब्द थिति पावई ॥
ज्ञान करहु बिचार, सतगुरु सो पाइये ।
सत्य शब्द निज सार, और सबै बिस्तार है ॥
शब्द स्वरूपी भवन, शब्द सुरति बासा जहां ।

पूरि रह्यो मन पवन, बिमल दरश देखे बिना॥
शब्द कहै गुरु ज्ञान, मूल ध्यान सतगुरु कहै।
सोई संत सुजान, शब्द बिवेकी होय जो ॥ ५३ ॥
जग में बहु प्रपंच, तामे जीव भुलान सब।
नहि पावै कोइ संच, सार शब्द जाने बिना॥
गहे शब्द निज मूल, सिंधहिं बुन्द समान है।
सूक्षम में अस्थूल, बीज बृक्ष बिस्तार ज्यों॥

॥ साखी ॥

जाय मिल्यो परिवार में, सुख सागर के तीर।
बरण पलटि हंसा किया, सतगुरु सत्य कबीर॥
शब्द खोज करै नहीं, चिंता दहै शरीर।
बिना शब्द पहुंचै नहीं, अस कथि कहै कबीर॥
शब्द शब्द सब कोइ कहै, वो तो शब्द बिदेह।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करिलेहु॥
शब्द हमारा आदिका, हमते बली न कोइ।
आगा पीछा सो करै, जो बल हीना होइ॥

घर घर हम सबसों कही, शब्द न सुनै हमार ।
ते भवसागर बूडि हैं, लख चौरासी धार ॥६०॥
॥ इति शब्द कुशब्द का अंग ६ ॥२४१+६०=३०१।

❀ ॥ अथ अक्ल (बुद्धि) का अंग १०॥ ❀

अकिल अर्श ते ऊतरी, बिधिना दीनी बांट ।
एक अभागी रहिगया, एकन लीनी छांट ॥१॥
बना बनाया मानवा, बिना बुद्धि बे तूल ।
कहा लाल लै कीजिये, बिना बास को फूल ॥
पछताया पर बस परी, सुवाके बुद्धि नाहि ।
अकिल बिहूना आदमी, यों बंधा जगमांहि ॥
अकिल विहीना सिंघ ज्यों, गयो शसा के संग ।
अपनो प्रतिमा देखि के, भ्यो जो तन को भंग ॥
अकिल बिहीना अंध गज, परचो फन्द में आय।
ऐसेही सब जग बंधा, कहां कहूं समझाय ॥
बिना वसीले चाकरी, विना बुद्धि के देह ।
बिना ज्ञान को योगना, फिरै लगाये खेह ॥

जल प्रमाणे माछली, गुरु परमाणे बुद्धि ।
जाको जैसा गुरु मिला, ताको तैसी सुद्धि ॥७॥
फेर परा नहिं अंग में, नहि इन्द्रिन के मांहि ।
फेर परा कछु बूझ में, सो निरुवारेउ नांहे ॥
फहमें आगे फहमे पीछे, फहमे दहिने डेरी ।
फहम पर जो फहम करत है, सो फहम है मेरी ॥
कारे बडकुल ऊपजे, जोरि बडी बुद्धि नाहि ।
जैसा फूल हजारिका, मिथ्या लगि झरि जाहि॥१०॥

❀ ॥ इति अकिल का अंग ॥ ❀

३०१+१०=३११ साखी

❀ ॥ अथ उपदेश का अंग ११॥ ❀

हरिजी यही बिचारिया, साखी कहै कवीर ।
भवसागर में जीव है, सुनिकर लागै तीर ॥ १ ॥
जाको मुनिवर तप करैं, बेद थकै गुण गाय ।
सोई देउं सिखापना, कोइ नहीं पति आय ॥
हसती चढ्यो ज्ञानके, सहज दुलीचाडार ।

स्वान रूप संसार है, भूसन दे संसार ॥३॥
कहते को कहि जानदे, गुरु की सीख तू लेइ।
साकट औ स्वान को, फेर जवाब मति देइ ॥
एकहि सब कथि गया, ब्रह्मा विष्णु महेश।
राम नाम तत्व सार है, सब काहू उपदेश ॥
जिन हरि जैसा जानिया, तिनकूं तैसा लाभ।
ओसे प्यास न भागसी, जब लगि धसै न आभ॥
कबीर आप राम कहौ, ओरन राम कहाय।
जिन मुख राम न ऊचरे, तिन मुख फिरि कहआय॥
जैसो माया मन रम्यो, तैसो राम रमाय।
तारा मण्डल भेदिके, तब अमरापुर जाय ॥
जैसी प्रीति कुटुम्ब सों, तैसी हरि से होय।
दास कवीर यों कहे, कबहुं नरक नहि जोय ॥
राम नामको लूट है, लूट सकै सो लूट।
पीछे तब पछतावगे, प्राण जायगा छूट ॥१०॥
इस दुनिया में आइ के, छाड़ि देइ तू ऐठ।

लेना है सो लेइले, उठी जात है पैठ ॥ ११ ॥
लेने को हरिनाम है, देने को अन्न दान।
तरने को आधीनता, बूडन को अभिमान ॥
खाय पकाय लुटायले, यह मनुआ मेहमान।
लेना है सो लेइले, यही गोय मैदान ॥
सतही में सत बांटिये, रोटी मांही टूक।
कहै कबीर वा दास को, कबहुं न आवै चूक ॥
देह धरने को यहि गुण, देइ देइ कछु देइ।
बहुरी देह न पायवो, अबकी देइ सो देइ ॥
कबीर कहत है देइ तू, जब लागि तेरी देहि।
देह खेह होजायगी, कोउ न कहेगा देहि ॥
कहै कबीर पूकारिके, दोय बात लखि लेय।
कर साहेब को बन्दगी; भूखे को कछु देय ॥
जो जल बाढ़े नाव में, घरमें बाढ़े दाम।
दोऊ हाथ उलीचिंये, याहि सज्जन को काम ॥
बसन्त ऋतु याचक भया, हरषि दिया द्रुमपात।

ताते नव पल्लव भया, दिया दूर नाहिं जात ॥ १६ ॥
पल्लै होय सो हाथ कर, हाथ होय सो देय ।
आगे हाट न बाणिया, लेना होय सो लेय ॥ २० ॥
इहई बिसाहना करिले, आगे विषयी बाट ।
स्वर्ग विसाहन ना मिलै, ना वहां बणिया हाट ॥
काल्ह करै सो आज कर, आज करै सो अब ।
पलमें परलय होगया, बहुरि करोगे कब ॥
पल में प्रलय बीतही, लोगन लगी धमार ।
पिछली शोच निवारिके, अगमन करो गुहार ॥
सकलो दुर्मति दूरकर, अच्छा जन्म बनाव ।
काग गमन गति छाडि दे, हंस गमन गति आव॥
आसन उडाय क्या भया, ज्यों अकाश को गिद्ध।
चारा वाको भूमि पर, उडे भया क्या सिद्ध ॥
कहै कबीर तै उतरि रहू, सम्बल परोह न साथ।
सम्बल घटे औ पग थके, जीव बिराने हाथ ॥
जिन २ सम्बल ना किया, अस पुरपाटन पाय ।

झाल परे दिन आथये, सम्बल किया न जाय ॥
जो जानहु जिव आपना, करहु जीव को सार।
जियरा ऐसा पाहुना, मिलै न दूजी बार ॥ २८ ॥
जो जानहु जग जीवना, जो जानहु सो जीव।
पानि पचावहु आपना, पानी मांग न पीव ॥
मागन मरण समान है, मति कोइ मांगै भीख।
मांगनते मरना भला, यहि सतगुरु का सीख ॥
मरो पै मांगो नहीं, अपने जिव के काज।
परमारथ के कारने, मांगत नाहीं लाज ॥ ३१ ॥
करु बाहियां बल आपने, छाडु बिरानी आस।
जाके आंगन नदी बहै, सो कस मरै प्यास ॥
बहते को मत बाहि जानदे; गाहि पकडाओ ठौर।
कहा सुना मानै नहीं, दे धक्का दुइ और ॥
(वहियाहै बहि जातु है, करगाहि ऐंवहु ठौर।
समुझाये समुझै नहीं, दे धक्का दुइ और ॥)
जिभ्या को दै बन्धने, बहु बोलना निवार।

सो पारखि से संग करूं, गुरुमुख शब्द बिचार ॥
जाकी जिभ्या बन्द नहीं, हृदया नाहीं सांच ।
ताके संग ना लागिये, घाले बटिया कांच ॥ ३६ ॥
बोलन है बहु भांति का, नयनन कछू नहिं सूझ ।
कहहि कबीर विचारि के, घट घट बाणी बूझ ॥
बोली एक अमोल है, जो कोइ बोलै जान ।
हिय तराजू तौलके, तब मुख बाहर आन ॥
साधु भया तो क्या भया, बोलै नहीं विचार ।
हते पराई आत्मा, जीभ बांधि तलवार ॥
मधुर बचन है औषधी, कटु बचन है तीर ।
श्रवण द्वार ह्वै संचरे, सालै सकल शरीर ॥ ४० ॥
बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर की घाट ।
अन्तर की करनी सबै, निकसै मुखकी बाट ॥
ऐसी बाणी बोलिये, मनको आपा खोय ।
औरन को शीतल करे, आपन को सुख होय ॥
जगमें बैरी कोइ नहीं, आपु जो शीतल होय ।

यहि आपा तू डारिदे, दया करे सब कोय ॥
कबीर निर्भय राम जपो, जब लागि दीवो बाति ।
तेल घटै बाती बुझै, सोवोगे दिन रात ॥ ४४ ॥
कर बंदा तू बंदगी, जो पावै दीदार ।
अवसर मनुषा देह का, बहुरि न बारम्बार ॥
पछतावोगे सही, कहा जो मानो रोस ।
जा मारग सांईं मिलै, तहां न चाखै कोस ॥
बार बार तोसे कहूं, सुनुरे मनुआ नीच ।
बनजारा का बहल ज्यों, पैडाही मे मीच ॥
बानिजारा का बैल ज्यों, टांडा उतरथा आय ।
एकन को दूना भया, यक चला मूल गंवाय ॥
कबीर हरिका नाम ले, तजि माया बिष चोज ।
बार २ नहिं पाइये, मनुष्य जन्म को मौज ॥
जरा आय जोरा किया, पीव आप पहिचान ।
मतरे कछु पल्लै पडै, ऊठत है खलिहान ॥ ५० ॥
यौवन संगदारी तजै, चलै निशान बजाय ।

शिरपर स्वेत सराइचा, दिया बुढापे आय ॥
कान लागि धौला कहै, काला मानी हार ।
राज बिराजी होत है, सकै तो राम संभार ॥५२॥
ऊंचा दीसै धौलहरा, मेढी चित्रशाली पोल ।
एके हरिके नाम बिन, यमरा पावै रोल ॥
ताजी छूटा शहर में, कसबे परी पुकार ।
दरवाजा तो जडा रह्या, निकसि गया असवार ॥
कबीर यह तन जायगा, सकहु तो लेहु बहोरि ।
नागे पायन ते गये, जिनके लाख करोरि ॥
कबीर यह तन जायगा, कौनो मारग लाव ।
कै संगति कर साधु की, कै हरि के गुण गाव ॥
जो तोको कांटा बोवै, ताहि बोवै तू फूल ।
तोको फूल के फूल है, वाको है त्रिशूल ॥
सबते लघुताई भली, लघुता ते सब होय ।
जस दुतिया को चन्द्रमा, शीश नवै सब कोइ ॥
ज़िन ढूंढा तिन पाइयां, गहिरे पानी पैठि ।

जो बौरे डूबन डरै, रहै किनारे वैठि ॥५६॥
ज्ञान रतन की कोठरी, चुपकरि दीजै ताल।
पारखि आगे खोलिये, कुंजी वचन रसाल ॥६०॥
साधु संत तेइ जना, जिन माना बचन हमार।
आदि अंत उत्पति प्रलय, देखहु दृष्टि पसार ॥
पानि प्यावत क्या फिरो, घर घर सायर बारि।
जो जन होयगा तृषावन्त, पीवैगा झखमारि ॥६२॥
कर बन्दगी बिवेक की, भेष धरे सब कोइ।
वह बन्दगी बहिजानदे, जहं शब्द बिवेक न होय ॥
जो तू चाहै मुझी को, छाडि सकल की आस।
मुझी ऐसा ह्वै रहो, सब सुख तेरे पास ॥ ६४ ॥

❁ ॥ इति उपदेश का अंग ॥ ११ ॥ ❁

३११+६४=३७५ साखी ॥

❁ ॥ अथ चेतावनी का अंग १२ ॥ ❁

कबीर नौबत आपनी, दिन दश लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली, बहुरि न देखो आय ॥१॥

जिनके नौबत बाजती, मंगल बधते बार ।
एके हरिके नाम बिन, गये जन्म सब हार ॥२॥
जिस घर नौबत बाजती, होते छतीसो राग ।
सो मंदिर खाली पडा, बैठन लागा काग ॥
ढोल दमामा गडगडी, शहनाई अरु भेरि ।
अवसर चले बजाइ के, हो कोइ लावै फेरि ॥
कबीर थोड़ा तो जीवना, मांडे बहुत मंडान ।
सबही उभा में लगि रहा, राव रंक सुलतान ॥
यक दिन ऐसा होयगा, सबसे पडे बिछोहि ।
राजा राना छत्रपती क्यों नहि सावध होहि ॥
उजड़ खेडे ठीकरी, गढि गढि गये कुम्हार ।
रावण सरखा चलिगया, लंका के सरदार ॥
ऊंचा मंदिर मालिया, चुनै कली ढुलाय ।
एकै हरि के नाम बिन, जबतब परलय जाय ॥
कबीर गर्ब कहं कीजिये, देही देखि सुरंग ।
बिछुरे पै मेला नहीं, (ज्यों) काचली तजै भुजंग ॥

कबीर गर्ब न कीजिये, अस यौवन की आश।
टेसू फुल्या दिवस दस, खंखर भया पलाश ॥१०॥
कबीर गर्ब न कीजिये, ऊंचा देखि अबास।
काल परु भुइं लेटना, ऊपर जमसी घास ॥
कबीर गर्ब न कीजिये, चाम लपेटे हाड।
हयबर ऊपर छत्रतर, तौभी देबो गाड ॥
कबीर गर्ब न कीजिये, काल गहें है केश।
ना जानौ कब मारि है, क्या घर क्या परदेश ॥
पक्की खेती देखकर, गर्बे कहां किसान।
अजहूं झोला बहुत है, घर आवे तब जान ॥
जिन घट प्रेम न प्रीतिरस, पुनि रसना नहि राम।
नर आये संसार में, उपजि खपजि बेकाम ॥
ऐसा यह संसार है, जैसा सेंबल फूल।
दिन दश के व्यवहार में, झूठे रंग न भूल ॥
कबीर धूल संकेलि के, पुडी जो बांधी एह।
दिवस चार का पेखना, अंत खेह का खेह ॥

पांच पहर धन्धे गया, तीन पहर रह्या सोय ।
एको पहर न हरि जपे, मुक्ति कहां से होय ॥
रात गवांया सोयकर, दिवस गवांयो खाय ।
हीरा जन्म अमोलथा, कौड़ी बदले जाय ॥ १९ ॥
कबीर मन्दिर लाखका, जडिया हीरालाल ।
दिवस चारका पेखना, बिनसि जायगा काल ॥
सपने सोया मानवा, खोलि देखै जो नैन ।
जीव परा बहु लूट में, ना कछु लेन न दैन ॥२१॥
आजकाल दिन एकमें, जंगल होयगा बास ।
ऊपर ऊपर फिरैंगे, ढोर चरंता घास ॥ २२ ॥
मरोगे मरिजावोगे, कोइ न लेगा नाम ।
उज्जड जाय बसावोगे, छांडि के बसता गाम ॥
हाड जरै ज्यों लाकडी, केश जरै ज्यौं घास ।
यह जग जरता देखिके, भयो कबीर उदास ॥
घर रखवाला बाहिरा, चिड़िया खाया खेत ।
आधा परधा ऊबरे, चेति सकै तो चेत ॥

यह देवल हाडका, मांसा तान बधान ।
खडहरिया पावै नहीं, देवल का साहिदान ॥ २६ ॥
राम पियारे छांडि के, करे आन का जाप ।
वेश्या केरा पूत ज्यों, कहै कवन को बाप ॥
जिन हरि की चोरी करी, गये राम गुण भूल ।
ते बिधिना बागुल रची, रहे उर्द्ध मुख झूल ॥
रामनाम जप लीजिये, छाडि दीजिये बान ।
पाडोसी में बीत गई, सो आपन में जान ॥
राम नाम जाना नहीं, पाल्यो कटक कुटुम्ब ।
धन्धाही में बहिगया, बार हुइ नाहिं बुम्ब ॥ ३० ॥
राम नाम जाना नहीं, हुआ बहुत अकाज ।
बूडोगे रे बापुडे, बडे बूढों की लाज ॥
राम नाम जाना नहीं, मेल्यो मनहि बिसारि ।
तेनर हाली बालदी, सदा पराये बारि ॥
यहि अवसर चेत्यो नहीं, पशु ज्यों पाली देह ।
राम नाम जान्यो नहीं, अन्त पडे मुख खेह ॥

राम नाम जान्यो नहीं, बातन बनाई मूल।
हरिते योंही हारिया, अंत पड़ी मुख धूल ॥ ३४ ॥
हृदया माही हारिया, लागी मोटी खोरि।
काया हांडी काठकी, ना यह चढे बहोरि ॥
राम नाम जान्यो नहीं, चूके अब की घात।
मांटी मिलन कुम्हार ज्यों, घणी सहै सरलात ॥
कबीर या संसार में, घणा मनुष्य मति हीन।
राम नाम जान्यो नहीं, आये टापा दीन ॥
आया अन आया हुआ, जो रे रता संसार।
पड़ा भुलावै गाफिला, गये कुबुद्धी हार ॥
कहा कियो हम आयके, क्या कहेंगे जाय।
इतके भये न उतके, चल्या मूल गवांय ॥
कबीर हरि के भक्ति बिनु, धृग जीवन संसार।
धुआं कासो धौलहरा, जात न लागै बार ॥ ४० ॥
जगतही में हम रांचिया, झूठा कुलके लाज।
तन विनसे कुल विनशि हैं, रटै न राम जहाज ॥

यह तन काचा कुम्भ है, चोट दवांसो खाय।
एकै हरि के नाम बिन, जब तब परलय जाय ॥
यह तन काचा कुम्भ है, लिय फिरै था साथ।
ठपका लागा फुट गया, कछु नाहिं आया हाथ ॥
पानी कासा बुद बुदा, देखत गया बिलाय।
ऐसे जिवडा जायगा, दिन दश ठोली लाय ॥
बासर सुख ना रैन सुख, ना सुख सपनां मांहि।
जेनर बिछुरे राम से, तिन को धूप न छांहि ॥
कबीर सूता क्या करे, क्यों नाहिं देखै जाग।
जाके संग से बीछुडा, वाही के संग लाग ॥
कबीर सूता क्या करै, उठि के जपो मुरारि।
एक दिना है सोवना, लम्बा पांव पसारि ॥
कबीर सूता क्या करै, गुण गोविन्द के गाय।
तेरे शिरपर यम खड़ा, खरच कदी का खाय ॥
कबीर सूता क्या करे, सूता होय अकाज।
ब्रह्मा को आसन डिगा, सुनी काल को गाज ॥

अपने पहरे जागिये, नापडि रहिय सोय ।
ना जानूं च्चण एक में, किसका पहरा होय ॥५०॥
चकवी बिछुरी रैनकी, आन मिले प्रभात ।
जेनर विछुरे राम से, दिवस मिले नहिं रात ॥
दीन गमायो दुनी संग, दुनी न चाली साथ ।
पांव कुल्हाड़ी मारिया, मूरख अपने हाथ ॥
कुल खोया कुल ऊबरे, कुल राखे कुल जाय ।
राम अकुल कुल भेटिया, सब कुल गया विलाय ॥
दुनिया के धोखे मुआ, चल्या कुल के कानि ।
तब क्या कुल लाज सो, जब ले धरे मसानि ॥
कुल करणी कारणे, हंसा गया विगोय ।
तब कौन कुळ लाज है, चार पांव का होय ॥
उज्जल पहिरे कापडे, पान सुपारी खांहि ।
सो एक हरि के नाम बिनु, बांधे यमपुर जांहिं॥
मल मल खासा पहिरते, खाते नागर पान ।
ते भी होते मानवी, करते बहुत गुमान ॥

गोफन माही पौढते, परिमल अंग लगाय ।
ते स्वपने दीसै नहीं, देखत गये बिलाय ॥५८॥
मेरा संगी कोइ नहीं, सबै स्वार्थी लोय ।
मन प्रतीति न ऊपजे, जिव विश्वास न होय ॥
कबीर बेडा जरजरा, फूटे छेक हजार ।
हरुए २ तरि गये, बूडे जिन शिर भार ॥
डागल ऊपर दौडना, सुख निदडी ना सोय ।
पुण्ये पाया दिवसडा, ओछी ठौर न खोय ॥
राम कहंता खिझ मरै, कुष्टी होय गलिजाय ।
शूकर ह्वै करि अवतरे, नाक बुडंता खाय ॥
मैं भँवरा तोहि बर्जियो, बन २ बास न लेय ।
अटकेगा कहुं बेल से, तडपि २ जिव देय ॥
बारी के बिच भंवर था, कलिया लेता बास ।
सो तो भँवरा उडि गया, छांडि बारी के आस ॥



१ भय बिनु भाव न ऊपजे, भय विनु होय न प्रीति।
जब हृदया से भय गया, मिटी सकल रस रीति॥
भय ते भक्ति करै सब, भय से पूजा होय।
भय पारस है जीव को, निर्भय करुमत कोय॥६६॥
डर पारस डर परम गुरु, डर करनी में सार।
डरता रहै सो ऊबरे, गाफिर खावै मार॥
खलक मिला खाली हुआ, बहुत किया बकबाद।
बांझ हलावै पालनो, तामें कौन सवाद॥
यह जग कोठी काठ की, चहुदिश लागी आगि।
भतिर रहा सो जल मुआ, साधू उबरे भागि॥६६॥
यहि बेरिया तो फिरि नहीं, मनमें देखु बिचारि।

॥ १ कवित्त पूरण साहेब कृत ॥

डरहीं ते योग यज्ञहू करत नर, डरही ते दान पुण्य ध्यान को धरत हैं। डरही ते राज छांड़ि भूप बन खण्ड गये, डरही ते तपस्या करी डरही में मरत हैं॥ डरही से भक्ति औ ज्ञान को अभ्यास करै, डरही ते अन्न छाड़ि दूबको चरत है। डरही व्यापक तिहुं लोक को बन्धन भयो, पूरण पारख बिना डर ना सरत है॥ १॥

आया लाभक कारणे, जन्म जुवा मति हारि ॥७०॥
बहल गढंता नर गढ्यो, चूके सींगरू पोंछ ।
एकहि हरि के नाम बिन, धिग दाढ़ी धिग मूंछ ॥
यह मन फूला बिषय बन, तहां न लाओ चित्त ।
हरि सागर क्यो न उड़ि चलो, सुनु बैन मन मित्त ॥
ऊंचे पानी ना टिकै, नीचेही ठहराय ।
नीचा होय सो भरपिवै, उंचा पियासा जाय ॥
नीचे नीचे सब तरै, जेते बहुत अधीन ।
चढ़े बहुत अभिमान ते, बूडे बहुत कुलीन ॥
कहै कबीर पुकारि के, चेते नाही कोय ।
अबकी बेरिया चेतिहो, सो साहेब का होय ॥
मानुष जन्म दुर्लभ अहै, होय न दूजी बार ।
पक्का फल जो गिरिं गया, बहुरि न लागे डार ॥
मानुष जन्म नर पाइके, चूके अबकी घात ।
जाय परे भव चक्र में. सहै घनेरी लात ॥
लोभ भरोसे कौन के, बैठि रहे अरगाय ।

ऐसे जियरा यम लुटै, मेढै लुटै कसाय ॥ ७८ ॥
ऐसी गति या संसार की, ज्यों गाडर की ठाट ।
एक पड़ा जोहि गाड में, सबै जाय तेहि बाट ॥
भ्रम का बांधा ई जगत, यहि बिधि आवे जाय ।
मानुष जन्महि पायनर, काहे को जहंड़ाय ॥ ८० ॥
धोखे धोखे युग गया, जन्महि गया सिराय ।
थिति नहिं पकडी आपनी, यह दुख कहां समाय ॥
केतो कहौं समझाय के, परहथ जीव बिकाय ।
मैं खैचूं सतलोक को, सीधा यम पुर जाय ॥
तू मति जाने बावरे, मेरा है सब कोय ।
पिण्ड प्राण से बंधि रहा, सो अपना नहि होय ॥
ऐसा संगी कोइ नहीं, जैसा जीव रू देह ।
चलती बेरिया रेन रा, डारि चलै ज्यों खेह ॥
एक शीश का मानवा, करता बहुतक हीस १ ।
लंका पपिं रावण गया, बीस भुजा दश शीस ॥

---

१ हिर्स तृष्णा

कहैं कबीर पुकारिके, ई लयऊ ब्यवहार ।
यक राम नाम जाने बिना, भव बूडि मुआ संसार ॥
मुवा है मरि जाहुगे, मुये की बाजी ढोल ।
स्वप्न सनेही जग भया, सहिदानी रहिगौ बोल ॥
जात सबन कहं देखिया, कहहि कबीर पुकार ।
चेतवा होहु तो चेति ले, दिवस परतु है धार ॥
नाथ मछन्दर बांचे नहीं, गोरख दत्त औ व्यास ।
कहहि कबीर पुकारि के, परे काल के फांस ॥
पाहन ह्वै ह्वै सब गये, अन भितियन को चित्त ।
जासो किये मिताइया; सो धन भया न हित्त ॥ ६०॥
झूठ झूठ कै डारहू, मिथ्या यह संसार ।
तेहि कारण मैं कहतहौं, जाते होय उबार ॥
बहुते तनके साझिया, जन्मो भरि दुखपाय ।
चेतत नाहीं बावरे, मोर मोर गोहराय ॥
खाते खाते युग गया, अजहूं न चेतौ आय ।
कहहि कबीर पुकारिके, जीव अचेते जाय ॥

परदे परदे चलि गया, समुझि परी नाहिं बानि ।
जो जानै सो बांचिहै होत सकल की हानि ॥९४॥
पांच तत्व का पूतला, मानुष धरिया नाम ।
एक कला के बीछुरे, विकल भया सब ठाम ॥
एक दिन ऐसा होयगा, कोउ किसी का नाहि ।
घरकी नारी को कहै, तनकी नाडी जाहि ॥
संसारी समय विचारिया, क्या गिरही क्या योग ।
अवसर मारे जातु है, चेतु विराने लोग ॥
भंवर विलम्बे बाग में, बहु फूलन की आस ।
जीव विलम्बे बिषय में, अन्तहु चले निरास ॥
काल खडा शिर ऊपरे, तैं जागु विराने भीत ।
जाका घरहै गैलमें, क्यों सोवै निश्चिंत ॥
काया काठी काल घुन, यतन यतन घुनखाय ।
काया मध्ये कालवस, मर्म न कोऊ पाय ॥१००॥
राउर को पिछुआर कै, गावै चारो सैन ।
जीव परा बहुलूट में, ना कछु लैन न दैन ॥ १०१ ॥

१ चलती चक्की देखिके, दिया कबीरा रोय।
दुई पट भीतर आइके, साबित गया न कोय॥
चक्की चलती सब कहै, मानी कहै न कोइ।
जो खीला से लगि रहै, बाल न बेका होय॥
शाहूते भौ चोरवा, चोरन ते भयो ज़ुज्झ।
तब जानैगो जीयरा, मार परै गो तुज्झ॥ १०४॥
सेमर केरा सूवना, छिवले बैठ्यो जाय।

---

१ काल चक्र चक्की चले, सदा दिवस औरात।
सगुण अगुण दुइपाटला, तामें जीव पिसात॥
किल्ला यकता सुमेरु अखण्ड। छिद्र तरौटा लाइ प्रचण्ड॥
हथरा तीनि मेख जाड़ि दीन्हा। चक्की चलत निशु बासर कीन्हा॥
पीसत संतत जीवहि डारी। भोग करत यम जाव ब्वारी॥
क्षण २ जीव बिकल तेहि माहीं। रक्षक जाने किलातर जाहीं॥
तहबां आदि पतन के रंधू। जीवहि चीन्ह परे नहिं संधू॥
कारण किल्ला पिसबे केरा। चक्की घुरमत ताहि दरेरा॥
बिनु रक्षक को लेइ बचाई। किल्ला चक्की सबै बिलगाई॥
चक्की कठिन संसार जो, सदा रहे घुरमाय।
निज झाई भर्माय कै, चूर भया समुदाय॥ १॥

चोच सवारे औ शिर धुनै,यह वाही को भाय ॥१०५
सेमर सुवना बेगि तजु, घनी बिगुर्चिन पांख ।
ऐसा सेमर जो सेवै, हृदया नाहीं आंख ॥
सेमर सुवना सेइया, दुइ ढेढी की आश ।
ढेढी फुटी चटाक दे, सुवना चला निराश ॥
सुआ है मरि जाहुगे, बिन शिर थोथे भाल ।
परेहु करायल बृक्ष तर, आजु मरहु की काल ॥
पावन पुहुमी नापते, दरिया करते फाल ।
हाथन पर्बत तौलते, तेहि धरि खायो काल ॥
नाम न जाने गांवका, भूला मारग जाय ।
काल गडेगा काटवा, अगमन कस न कराय ॥
आज काल दिन एकमें, अस्थिर नहीं शरीर ।
कहं कबीर कस राखिहो, कांचे बासन नीर ॥
सतगुरु बचन सुनो हो सन्तो, मत लीजै शिरभार ।
हौं हजूर ठाढ़े ही कहतहौं, अबते समर संभार११२॥
मच्छ बिकाने सब चले, धीमर के दरबार ।

अखिया तेरी रत्नरी, तै क्यों पहिरा १ जार ॥
पूरब उगै पश्चिम अथवे, भखे पवन का फूल ।
ताहू को तो राहु गरासै, मानुष काहे को भूल ॥
जीव मर्म जाने नहीं, अंध भया सब जाय ।
बादी द्वारे दाद नहीं, जन्म जन्म पछिताय ॥
सुनिये सबकी निवेरिये अपनी ।
सेंदुर को सिंधोरा झपनी की झपनी ॥ ११६ ॥
राम भजो तो अब भजो, बहुरि भजोगे कब ।
हरियर हरियर रूखडे, ईंधन होगयो सब ॥
पाव पलकी सुधि नहीं, करे काल को साज ।
काल अचानक मारि है, ज्यों तीतर को बाज ॥
कबीर खडा बजार में, लिय लुकाठी हाथ ।
जो घर फूंके आपना, चलै हमारे साथ ॥
जैसी जाकी बुद्धि है, तैसी कहै बनाय ।
वाको बुरा न मानिये, लेन कहां ते जाय ॥१२०५॥

---

१ जार = जाल, फांस, कमंद, दाम,

निन्दा हमारा जो करै, मित्र हमारा सोइ ।
साबुन लेके गांठ का, मैल हमारा धोय ॥ १२१ ॥
जब तू आया जगत में, लोक हंसे तू रोय ।
ऐसी करणी ना करो, पाछे हांसी होय ॥
सुधरी बिगरे बेगिही, बिगडी फिर सुधरै न ।
दूध फटै कांजी परै, सो फिर दूध बनै न ॥
जबलग ढोला तबलग बोला, तबलग धन ब्यवहार ।
ढोला फूटा धन गया, कोइ न झांकै द्वार ॥१२४॥

❀ ॥ इति चेतावनी का अंग ॥ १२ ॥ ❀

३७५+१२३=४९८ साखी

❀ ॥ अथ भक्ती का अंग ॥१३॥ ❀

कबीर भक्ति श्रेणी मुक्ति की, सन्त चढ़े सब धाय ।
जिन जिन मन आलस किया, जन्म २ पछताय ॥
भक्ति बिनु काल न बिसरे, लाख करे जो कोइ ।
शब्द सनेही ह्वै रहै, घरको पहुचै सोइ ॥ २ ॥
खेत बिगाड्यो खडतुवा, सभा बिगाडी कूर ।

भक्ति बिगाडी लालची, ज्यों केसर में धूर ॥ ३ ॥
तिमिर गया रवि देखते, कुबुद्धि गई गुरु ज्ञान ।
सुगति गई यक लोभ से, भक्ति गई अभिमान ॥४॥
भक्ति भाव भादो नदी, सबै चली घहराय ।
सरिता सोई सराहिये, जेठ मास ठहराय ॥
सबसे कहूं पुकारि के, क्या पण्डित क्या शेष ।
भक्ति ठानि शब्दै गहै, बहुरि न काछै भेष ॥
कामी क्रोधी लालची, इनते भक्ति न होय ।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरण कुल खोय ॥
भक्ति द्वारा सांकरा, राई दशवें भाव ।
मन ऐरावत ह्वै रहा, कैसे होय समाव ॥ ८ ॥
ज्ञान सम्पूरण नाभया, हृदया नहीं जुड़ाय ।
देखा देखी भक्तिका, रंग नहीं ठहराय ॥ ९ ॥
क्षेमा खेत भल जोतिया, सुमिरण बीज जमाय ।
खण्ड ब्रह्माण्ड सूखा पड़े, भक्ति बीज नहिं जाय ॥
जल ज्यों प्यारी माछली, लोभी प्यारा दाम ।

माता प्यारा बालका, भक्ति पियारी राम ॥ ११ ॥
भक्त भेषि बहु अंतरा, जैसे धरणि अकाश ।
भक्त सुमिरै राम को, भेषे जगत की आश ॥
जब लगि भक्ति सहकामता, तबलगि निष्फल सेव।
कहै कबीर वह क्यों मिलै, निः कामी निज देव ॥
कबीर केशव के भक्ति से, संशय डाला धोय ।
जो दिन गया भक्ति बिनु, सो दिन सालै मोय ॥
भक्ति प्यारी राम की, जैसी प्यारी आगि ।
सारा पट्टन जलि गया, बहुरि ले आवै मांगि ॥
भक्ति बीज पलटे नहीं, जो युग जाय अनन्त ।
ऊंच नीच घर जन्म ले, तऊसंत को संत ॥
हरि भक्ति में तीन गुण, सब कोइ लागै पाय ।
खाने को मीठा मिलै, अन्त वैकुण्ठ लैजाय ॥ १७॥

❀ ॥ इति भक्ति का अंग ॥ १३ ॥ ❀

४६८+१७=५१५ साखी ॥



❁ ॥ अथ प्रेमका अंग॥१४॥ ❁

यह घरहै प्रेमका, खाला का घर नाहि ।
शीश उतारे भुंई धरे, तब पैठे घर माहि ॥ १ ॥
शीश उतारी भुईं धरे, तापर राखे पाव ।
दास कबीरा यों कहे, ऐसा होय तो आव ॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजे, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा परजा जेहि रुचे, शिरदे के लैजाय ॥
प्रेम प्याला जो पिवै, शीश दछिना देइ ।
लोभी शीश ना दै सकै, नाम प्रेम का लेइ ॥
प्रेम प्याला भरि पिया, रचि रहा गुरु ज्ञान ।
दिया नक्कारा शब्द का, लाल खडे मैदान ॥
क्षण चढ़ै छण ऊतरे, सो तो प्रेम न होय ।
अघट प्रेम पिंजर बसे, प्रेम कहावै सोय ॥
प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्है कोय ।
आठ पहर भीना रहे, प्रेम कहावे सोय ॥
प्रेम प्यारे लालका, मनमें किये भाव ।

सतगुरु के प्रसाद से, भलो बनो है दाव ॥ ८ ॥
जा घट प्रेम ना बसे, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार का, सांस लेत बिन प्राण ॥
आया बघूला प्रेमका, तिनका उडा अकाश।
तिनका तिनका से मिला, तिनका तिनके पास ॥
प्रेम बिकाता में सुना, माथा बदले साट।
मुक्ति विलम्ब न कीजिये, ततक्षण दीजे काट ॥
प्रेम बिना धीरज नहीं, बिरह बिना बैराग।
ज्ञान बिना जावै नहीं, मन मनसा को दाग ॥
प्रेम तो ऐसा कीजिये, जैसे चन्द्र चकोर।
घीच टूटि भइ मांगरी, चितवतवाही ओर ॥
गही टेक छाड़ै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
ऐसा तप्त अंगार है, ताहि चकोर चबाय ॥
चकोर भरोसे चन्द्र के, निगले तप्त अंगार।

---

१ रसिक जनों के मनरंजनार्थ अन्य कवि रचित प्रेम अंक के कविता अंत में दिया है सज्जन वहां से देख लेवें ॥

कहै कबीर दाहै नहीं, ऐसी बस्तु लगार ॥ १५ ॥

❀ ॥ इति प्रेम का अंग ॥ १४ ॥ ❀

५१५+१५=५३० साखी

॥ अथ बिरह का अंग ॥१५॥

अंखिया तो झांई पडी, पन्थ निहारि निहार ।
जिभ्या तो छाला पडा, राम पुकार पुकार ॥ १ ॥
नयनन तो झर लाइया, रहटि बहै निशि याम ।
पपिहा ज्यों पिव २ करै, कबरे मिलैंगे राम ॥
बिरह वडो वैरी भयो, हृदय धरै न धीर ।
सुरति सनेही ना मिले, तब लग मिटै न पीर ॥
बिरहिनि ऊभी पंथ सर, पंथी पूछै ध्याय ।
एक शब्द कहु पीव का, कबरे मिलैंगे आय ॥
बहुत दिनन को जोवती, बाट तुम्हारी राम ।
जिव तरसे तुव मिलन को, मन नाहीं बिश्राम ॥
बिरिहिनि ऊठै भुई पडै, दर्शन कारण राम ।
मूवा पीछे देहुगे, आवै कौने काम ॥ ६ ॥

सुवा पीछे मत मिलो, कहै कबीरा राम ।
लोहा माटी ह्वै गया, पारस कौने काम ॥७॥
रतवन्ती आरत करै, राम सनेही आव ।
सुरति कियो साईं मिले, तो बिरिहिनि का भाव॥
अंदेशो नहि भागसी, संदेशो कहि आय ।
कै हरि आवे आपही, कै हरि पास बुलाय ॥
आय सकूं नहिं तोहि पै, सकूं न तुझ बुलाय ।
जियरा यों लय होयगा, बिरह तपाय तपाय ॥ १० ॥
यह तन जारी भस्म करूं, धुवा होय सुरंग ।
कबहुक राम दया करी, बरषि बुझावे अंग ॥
यह तन जारी मसि करूं, लिखूं राम का नांव।
लेखनि करूं करम की, लिख लिख राम पठांव॥
पीर पिराउनी बिरह की, पंजर पीर न जाय ।
एक पीर है बिरह की, रहै कलेजे छाय ॥
बिरह भुवगम तनडसा, मंत्र न लागै कोय ।
राम बियोगी ना जिय, जिय तो बाउर होय ॥

बिरह भुवंगम पैठि के, किया कलेजे घाव ।
बिरहा अंग न मोरि है, ज्यों भावे त्यों खाव ॥१५॥
बिरहा आया दरसकूं, कडुवा लागा काम ।
काया लागी काल होय, मीठा लागा राम ॥
या तनको दीवा करूं, बाती मेलूं जीव ।
लोही सींचूं तेल ज्यों, कब मुख देखूं पीव ॥
बिरहा राम पठाइया, कहि साधो को परमोधि ।
जाघट ताला वेलिया, ताको लावो सोधि ॥
अंखिया प्रेम कसाइया, जिन जानै दुखदाय ।
राम सनेही कारणे, रोइ २ रात बिताय ॥
जोई आसू सजन जन, सोइ लोक बहाहि ।
जो लोचन लोहू चुवैं, तो जानूं हेतु हियाहि ॥२०॥
कबीर हंसना दूरि करी, करु रोवन से चित्त ।
बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मित्त ॥
हसूं तो दुख ना बीसरे, रोऊं तो बल घटजाय ।
मनाहि माहि विसुरना, ज्यों घुन काठहि खाय ॥

कीड़े काठ जो खाइया, खाधा किनहु न दीठ।
छाल उपार जो देखिया, भीतर जामिया चीठ॥
चीठ जो जामिया चूनका, बैरी बिरहा देख।
बिछड़ा होय जो सज्जना, बेदन किनहू लेख॥
हसि हसि किनहु न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हासी खेल जो हरि मिलै, तो नहीं दुहागण कोय॥
हासी खेळे हरि मिलै, कौन सहे खुरसान।
काम क्रोध तृष्णा तजै, ताहि मिलै भगवान॥
हवस करै हरि मिलन की, औ सुख चाहे अंग।
पीड सहे बिनु पदमिनी, पूत न लेत उछंग॥
देखत देखत दिन गया, निशि भी देखत जाय।
बिरहिनि पिव पावै नहीं, जियरा तरस तमाय॥
कै बिरहिनि को मीचदे, कै आय के दिखलाय।
आठ पहर का दाझना, मुझपै सहा न जाय॥
बिरहिनि थी तो क्यों रही, जली न पिव की लार।
रहो रहो मुगुध गहेलडी, बिरहिनि लाजामार॥३

विरहिन ओदी लाकडी, सपचे औ धुंधुआय।
छूट पडूं या बिरहसे, जो सिगरो जरिजाय ॥३१॥
तन मन योबन यों जला, बिरह अग्नि से लागि।
मृतक पीड न जानही, जाने गी क्या आगि ॥
बिरह कमण्डल भरि लिया, बैरागी दोइ नैन।
पाई दरस मधूकरी, छका रहै दिन रैन ॥
नैन हमारी बावरी, छिन छिन चाहे तुझ।
ना तू मिला ना मै सुखी, ऐसी बेदन मुझ ॥
फाडि पटोली ध्वज करूं, काम लडी फहराय।
जिहि जिहि भेषे हरि मिलै, सोइ सोइ भेष कराय ॥
पर्वत पर्वत मै फिरी, नैन गवायो रोय।
सो बूटी पाऊं नहीं जाते जीवन होय ॥
बिरह तेज तनमें तपै, अंग सबै अकुलाय।
घर सूना जिव पीवमें, मौत ढूंढ फिरि जाय ॥
सुखिया सब संसार है, खावै अरु पडि सोय।
दुखिया दास कबीर है, जागै रू फिरि रोय ॥

बिरह जलाई मैं जला, जलती जल रहि जाय ।
मै देखा जल हरि जलै, सन्तो कहां बुझाय ॥३६॥
बिरह जलाई मै जली, मो बिरहिनि को दुख ।
छांह न बैठूं डरपती, मति जलि ऊठै रुख ॥ ४० ॥
बिरहिनि जलती देखि कर, सांई आये धाय ।
प्रेम बुन्द ते सींचके, तनमें लई मिलाय ॥
मो बिरहिनि का पिव मुआ, दाग न दीया जाय ।
मास गली भूंई पडा, करक रहे गलताय ॥
चूडी पटकूं पलंग से, चोली लाऊं आगि ।
जा कारन यह तन धरा, ना सूती गल लागि ॥
कबीर तरुणी बिरहिनी, यौबन वाको कुंज ।
अन्तर अन्तर प्रज्वालिया, प्रकटे बिरहा पुंज ॥
अम्बर कुंजा करालिया, गरजि भरे सब ताल ।
जिनते गोविन्द बीछुडा, तिनका कौन हवाल ॥
कागा करक ढंढोलिया, मूठी यक लीधा हाड ।
जिस पिंजर बिरहा बसै, मांस कहांते काड ॥४६॥

रक्त मांस सब भखि गया, नेक न कीधी कान।
अब बिरहा कूकर भया, लागा हाड चबान ॥४७॥
बिरहा भयो बिछावना, ओढन बिपत बियोग।
दुख सिर्हान्ने पायतन, कौन बना संयोग ॥
बिरह जगावै ब्रह्म को, ब्रूह्म जगावे जीव।
जीव जगावै सुरति को, सुरति मिलावै पीव ॥
मैं तुमको ढूंढत फिरूं, कहीं न मिलिया राम।
हृदया माही उठि मिलो, सकल तुम्हारा ठाम ॥
बिरहिनि बिरह जगाइया, पैठि ढंढोरे छार।
मत कोइ कोइला ऊबरे, जारे दूजी बार ॥५१॥
तन मन यौवन जारिके, भस्म करी है देह।
उठी कबीरा बिरहिनी, अजहुं ढढौरै खेह ॥
बिरहा सेती मत डरै, मनुवा मेरा सुजान।
हाड मास रक्त खात है, जीवत करै मसान ॥
सो दिन कैसा होगया, राम गहेगा बांह।
अपने कर बैठावही, चरण कमल की छांह ॥

अंक भरे भर भेटिये, मन नहिं बांधे धीर।
कहै कबीर ते क्यों मिले, जबलगि द्वै शरीर ॥५५॥
साईं ते बड रूखडा, मैं जान्यो तालडिया।
तेरे नाम बिलम्बिया, ज्यों जल माछलिया ॥
निशिदिन दाझै बिरहिनी, अन्तर गत की लाय।
दास कबीरा क्यों बुझै, सतगुरु गया लगाय ॥
जोजन बिरही नाम के, झीना पिंजर तासु।
नैन न आवे नीदरी, अंग न जामै मासु ॥
राम बियोगी बिकल तन, कर छुओ मत कोय।
छुवतही मरि जायंगे, ताला बेली होय ॥
जे जन बिरही नाम के, सदा मगन मन माहिं।
ज्यों दर्पण की सुन्दरी, गहे न आवै बांहि ॥ ६०॥
जों जन भीजे राम रस, बिगासित कबहु न रुक्ख।
अनुभव भाव न दरशै, ते नर सुक्ख न दुक्ख ॥
देश बिदेशे हौं फिरा, मनही भरा सुकाल।
जाको खोजत हौं फिरौं, ताका परा दुकाल ॥ ६२॥

विरहिनि साजी आरती, दर्शन दीजै राम।
मूये दर्शन देहुगे, आवै कौने काम ॥ ६३ ॥
जाहु बैद घर आपने, बात न पूछै कोय।
जिन यह भार लदाइया, निर्बाहेगा सोय ॥ ६४ ॥

॥ इति बिरह का अंग ॥ १५ ॥

५३०+६४=५९४ साखी

⊛ ॥ अथ ज्ञान बिरह का अंग ॥ १६ ॥ ⊛

कबीर चिनगी बिरह की, मोतन पडी उडाय।
तन जरि धरती जली, अम्बर जरिया जाय ॥ १ ॥
दीपक पावक आनिया, तेल भी लाया संग।
तीनो मिलकर जोइया, उडि २ मिलै पतंगा ॥
हृदया भीतर दव वलै, धुआं न प्रकट होय।
जाकी लागी सो लखे, कि जिन रे लगाइ होय ॥
मारा है मरि जायगा, बिरह अग्नि की भाल।
मूरख को जानूं नहीं, चतुरन जासी चाल ॥ ४ ॥
मारा है मरि जायगा, बिन सिंगी बिन भाल।

पड़ा पुकारै बृक्ष तर, आज मरै की काल ॥ ५ ॥
चोट सचानी बिरह की, सब तन जर जर होय।
मारन हारा जानही, कै जिन लागी सोय ॥
झल उठी झोली जली, खप्पर फूटम फूटि।
हंसा योगी चलिगया, आसन रही बिभूटि ॥
आगि जो लागी नीर में, कादो जलिया झारि।
उत्तर दाक्षिन के पण्डिता, रहे बिचारि बिचारि ॥
दव लागी सागर जला, पच्ची बैठा आय।
दादी देह न पालवै, सतगुरु गये लगाय ॥
गुरु दाझा चेला जला, बिरह लगाई आगि।
तनका कपड़ा ऊबरा, गल पूरा कै लागि ॥ १० ॥
कबीर याहि दिशि रुलाइया, मारग पुकारै रोय।
जिस बनमें क्रिड़ा किया, दाझत है बन सोय ॥
आगै आगै दव बलै, पाछे हरिअर होय।
बलिहारी वहि बृक्ष की, ज़र काटे फल होय ॥
बिरह कुल्हाड़ी तन बहै, घाव न वीधै रोहि।

मरिबै को संशय नहीं, छूटि गया भ्रम मोहि ॥
कबीर स्वप्ने रैनके, पडा कलेजे छेक ।
जब सोऊं तब दोयजना, जब जागूं तब एक ॥
पानी माही प्रज्वली, हुई अपर बल आगि ।
सरिता बहती रहगई, मच्छी रही जल त्यागि ॥
ब्रह्म अग्नि तन मन जला, लागि रहा ततजीव ।
कै वहि जानै बिरहिनी, कै जिन भेंटा पीव ॥ १६ ॥
पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय ।
चितचकमक चहुटै नहीं, धुआं ह्वै ह्वै जाय ॥
कफ काया चित चकमका, झारी बारम्बार ।
तीन बार धूंआं पडा, चौथे पडी अंगार ॥
बिरहा मोसो यों कहे, काठा पकडो मोहि ।
चरण कमल की मौज में, ले पहुचाऊं तोहि ॥
अगवानी तो आइया, ज्ञान विचार विवेक ।
पाछे हरिभी आवसी, सारी सूज समएक ॥ २० ॥
सबही तरुवर जाइके, सब फल लीन्हो चीखं ।

फिर २ मांगत कबीर है, दर्शन ही की भीख ॥२१॥

❀ ॥ इति ज्ञान विरह का अंग ॥ १६ ॥ ❀

५९४+२१=६१५. साखी

❀ ॥ अथ परचा का अंग ॥ १७ ॥ ❀

कबीर तेज अनन्त का, मानो सूरज सैन ।
पति संग जागी सुन्दरी, को तकि देखा नैन ॥१॥
पार ब्रह्म के तेज का, कैसा है अनुमान ।
कहबे का शोभा नहीं, देखेही प्रमान ॥ २ ॥
अगम अगोचर गम नहीं, तहा झिलमिल ज्योति ।
तहां कबीरा बन्दगी, पाप पुण्य नहिं होति ॥
कबीर मन मधुकर भया, किया नर तरु बास ।
कवल जो फूला नीर बन, कोइ न रखै निजदास ॥
सीप नहीं सायर नहीं, सेवाती भी नाहिं ।
कबीर मोती नीपजै, शून्य शिखर घटमाहिं ॥ ५ ॥
घट में औघट पाइया, औघट माही घाट ।
कहै कबीर परचै भया, गुरु दिखाई बाट ॥ ६ ॥

जहां मोतियन की झालरी, हीरन का प्रकास ।
चन्द्र सूर को गम नहीं, दर्शन पावै दास ॥ ७ ॥
योगी हुआ झलक लगी, मिटगया ऐंचातान ।
उलटि समाना आपमें, हुआ ब्रह्म समान ॥
कुछ करनी कछु कर्म गति, कुछ पूर्बिला लेख ।
देखो भाग कबीर का, दोस्त किया अलेख ॥
वह मोती मत जानियो, पुवै पोत के साथ ।
यह तो मोती शब्दका, बेधि रहा सब गाथ ॥१०॥
मन लागा उनमुनी सों, गगन पहूंचा जाय ।
चन्द बिहूना चांदना, तहं अलख निरंजनराय ॥
पानी ही ते हिम भया, हिमहि गया बिलाय ।
कबीर जो था सोई भया, अब कछु कहा न जाय ॥
जाकारण मै जायथा, सोतो मिलिया आय ।
साईं ते सन्मुख भया, लगा कबीरा पाय ॥
चिंता मणी पाई चौहटे, लइ मार के हाथ ।
साईं मोपर मेहर करी, अबरे मिलू केहि साथ ॥

पंखी उडानी गगन को, पिण्ड रहा परदेश ।
पानी पीया चोंच बिन, भूल गया वह देश ॥१५॥
सचु पाया सुख ऊपजा, दिल दरिया भर पूर ।
सकल पाप सहजे गया, साईं मिला हजूर ॥
हरिं पाया शीतल भया, मिटा मोह तन ताप ।
निसिबासर सुख निधि लहा, अन्तर प्रगटे आप ॥
तन भीतर मन मानिया, बाहर कतहु न लाग ।
ज्वाला था फिरि जल भया, बूझी जलती आग ॥
तत पाया तन बीसरा, मन ध्याया धरि ध्यान ।
तपत मिटा शीतल भया, शून्य किया स्नान ॥
कबीर दिल दरिया मिला, फल लागा समरत्थ ।
सायर माहिं ढंढोलता, हीरा चढि गया हत्थ ॥२०
मै था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहिं ।
प्रेम गली अति सांकडी, दोय दिल कहां समाहि
जा कारण मैं जायथा, सो तो पाया ठौर ।
सोही फिरि आपन भया, जाको कहता और ॥२

देखा एक अगम है, महिमा कही न जाय।
तेज पुंज परसा धनी, नैना रहा समाय ॥ २३ ॥
गगन गरजि अमृत चुवै, कदली केल प्रकाश।
तहां कबीरा बन्दगी, कै कोई निज दास ॥
जा दिन किरतम नाहता, नहीं हाट नहि पाट।
होता कबिरा संतजन, देखा औघट घाट ॥
नहीं हाट नहि पाट था, धरती धरै न धीर
असंख्य युग परलय गया, तबकी कहै कबीर ॥
पांच तत्व गुण तीन के, आगे भक्ति मुकाम।
जहां कबीर घर किया, तहां दत्त न गोरख राम ॥
अधर दुलैचा अधर धर, नहि ब्रह्मा विष्णु महेश।
तहां कबीरा घर किया, पार न पावै शेश ॥
सुरनर मुनि औलिया, यह सब उरली तीर।
अल्लह राम की गमि नहीं, तहं घर किया कबीर ॥
हम बासी उस देश के, जहां ब्रह्म का खेल।
दीपक देखा गैब का, बिन बाती बिन तेल ॥३०॥

हमबासी उस देश के, (जहां) अबिनाशी की आन।
दुख सुख कोउ ब्यापै नहीं, सब दिन एक समान।
हम बासी उस देश के, जहं बारह मास बिलास।
प्रेम झरै बिगसै कमल, तेज पुंज प्रकास ॥ ३२ ॥
❀ हम बासी उसदेशके, (जहं) जातबरण कुलनाहिं
शब्द मिलावा ह्वै रहा, देह मिलावा, नाहिं ॥३३॥

॥ १ रेखता ॥

कहौं उस देश की बतिया। जहां नहिं होत दिन रतिया ॥ १ ॥
नहिं रवि चन्द्र औतारा। नहिं उजियार आंधियारा ॥ २ ॥
नाहिं तहं पवन औ पानी। गये वहि देश जिन जानी ॥ ३ ॥
लखी जिन अलख का डेरा। क्रांति बिन पावे नहीं फेरा ॥ ४ ॥
नहीं तहं धरती आकासा। करे कोइ संत तहं बासा ॥ ५ ॥
उहां गम काल की नाहीं। नहीं तहं धूप औ छांहीं ॥ ६ ॥
न योगी योग से ध्यावै। न तपसी देह जल वावै ॥ ७ ॥
सहज मो ध्यान सो पावे। सुरति का खेल जेहि आवे ॥ ८ ॥
सोहंगम नाद नहिं भाई। न बाजे शंख शहनाई ॥ ९ ॥
निःअक्षर जाप तहं जापे। उठत ध्वनि सून्न सो आपे ॥ १० ॥
मंदिर में दीप बहु वारी। नयन बिनु भये अंधियारी ॥ ११ ॥
कबिर का देश है न्यारा। लखे कोइ नाम का प्यारा ॥ १२ ॥

कबीर दिल दरिया मिला, हृदय नावठा आय ।
जीव ब्रह्म मेला हुआ, अब कछु कहा न जाय ॥३४॥
पिंजर प्रेम प्रकाशिया, हृदय प्रेम प्रकाश ।
चन्द्र सूर की गम नहीं, दर्शन पावै दास ॥३५॥
जब दिल मिला दयाल से, तब कछु अन्तर नाहिं ।
पाला गलि पानी मिला, योहरिजन हरि माहि ॥
ममता मेरा क्या करै, प्रेम उघारी पोल ।
दर्शन भया दयाल का, सूल भई सुख सोल ॥
धरही अधर पिछानिये, धर अधरेही माहिं ।
धर अधर मेला भया, तब कछु अन्तर नाहिं ॥
राम सरोवर सुभग जल, हंसा कलोल कराय ।
मुक्ताहल मोती चुगै, अब उडि अनूते न जाय ॥
सुरनर बांछे मुनि जना, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
ऊंचा महल कबीर का, पार न पावै शेश ॥ ४० ॥
अनल पच्छा चेगुटा, गिरते कियो विचार ।
सरति बांधि चैतन भया, जाय मिला परिवार ॥

कबीर कमल प्रकाशिया, बूह्म बास तहां होय।
मन भँवरा तहां लुब्धिया, जानैगा जन कोय ॥४३॥
शून्य सरोवर मीनमन, नीर तीर सब देव।
सुधा सिंधु सुख बिलसही, कोइ बिरला जानै भेव॥
मैं लागा उस एकसो, एक भया सब मांहि।
सब मेरा मैं सबन का, तहां दूसरा नांहि ॥४४॥
अनुभव काटै रोग को, अनहद उपजै आय।
सेहजा का जल निर्मला, पीवेगा कोइ रुचिलाय॥
कबीर संशय करूं न मैं डरूं, सब दुख दिया निवारि
सहज शून्य में रमि रहा, पाया देव मुरारि ॥
लौन गला पानी मिला, बहुरि न भरनी गून।
हरिजन हरिसे मिलि रहा, काल रहा शिर धूनि॥
ध्वजा फरकै ध्वनि में, बाजे तबल निशान।
तकिया है इस देहका, मंडि रहना चौगान ॥
पूरा से परिचय भया, दुख दुख मेला दूर।
यम से बाकी कटिगई, साईं मिला हजूर ॥ ४६

गुणा इन्द्री सब बश भई, सतगुरु करी सहाय।
घट में ब्रूह्म बिराजिया, बक बक मरे बलाय ॥५०॥
कहना था सो कहि रहा, अब कछु कहा न जाहि।
एक रही दूजी गई, पैठा दरिया मांहि ॥
गगन मण्डल के बीच में, तहं यक झलकै नूर।
निगुरा महल न पावही, पहुंचैगा गुरु पूर ॥
उलटि समाना आपमें, प्रकटी ज्योति अनन्त।
स्वामी सेवक एकघर, खेलै सदा बसन्त ॥
अजर द्वीप प्रकाश है, पारब्रूह्म का खेल।
दीपक देखा गैबका, बिन बाती बिन तेल ॥
हिलि मिलि खेलूं ब्रूह्म से, अन्तर रही न रेख।
समझे का मत एक है, क्या पण्डित क्या शेख ॥
मैं जानेथा मिलूंगा, और राम से जाय।
राम कबीरा ह्वै रहा, शीश नवाऊं काय ॥
मन लागा शून्य में, निसदिन रहे गलतान।
तन मनकी कछु सुधि नहीं, पाया पद निर्बान ॥५७॥

रेख रूप जेहि है नहीं, अधर धरयो नहीं देह।
गगन मंडल के बीच में, रहता पुरुष बिदेह ॥५८॥
सात सुरति के बाहिरे, सोरह संख के पार।
तहं समरथ के बैठका, हंसन करे अधार ॥ ५९ ॥

॥ इति परिचय का अंग ॥ १७ ॥

६१५ +५९=६७४साखी

॥ १ अथ रस का अंग ॥ १८ ॥

कबीर प्याला प्रेम का, अन्तर लिया लगाय।
रोम २ में रमि रहा, और अमल क्या खाय ॥ १ ॥

॥ रामकली ॥

काया कलालनि लाहनि मैलौ गुरु का शब्द गुड कीनरे। तृष्णा काम क्रोध मद मतसर काटि काटि कसु दीनरे॥ १ ॥ कोइ हैं रे संत सहज सुख अन्तर जाको जप तप देउं दलालीरे। एक बूंद भरि तन मन देवो जो मद देइ कलालीरे ॥ २ ॥ भवन चतुर्दश भाठी कीनी ब्रह्म अग्नि तन जारीरे। मुद्रा मदक सहज धुनि लागी सुषमिन पोचन हारीरे ॥ ३ ॥ तीरथ व्रत नेम शुचि संयम रवि शशि गहनै देउरे। सुरति प्याला सुधारस अमृत यहि महारस पीऊरे॥ ४ ॥

कबीर हम हरि रस पिया, बाकी रही न छाक।
पाका कलस कुम्हार का, बहुरि न चढसी चाक ॥
राम रसायन अधिक रस, पीवत अधित रसाल।
कबीर पावन दुलभ है, मागै सीस कलाल ॥
कबीर भाठी प्रेम की, वहुतक बैठे आय।
शिर सौंपे सो पीवसी, और ते पिया न जाय ॥ ४ ॥
हरि रस महँगा जनि पिवो, लेसी शीश कलाल।
दिल ओछा घर दुलभ है, बिकैगी वह बहु माल ॥

निज्झर धार चुवै अति निर्मल यहि मनुआ रात्योरे। कहैं कबीर सगले मद छूछे इहै महारस साचोरे ॥ ५ ॥ दूसरा ॥ २ ॥ गुड करि ज्ञान ध्यान करि महुआ भव भाठी मन धारा। सुष्मुनि नारी सहज समानी पीवै पीवन हारा ॥ १ ॥ अवधू मेरा मन मतवारा। उनमद चढ़ा मदन रस चाखा त्रिभुवन भया उजियारा ॥ १ ॥ दुइ पुरजोरि रसाई भाठी पीउ महा रस भारी। काम क्रोध दुइ किय जलेता छूटि गई संसारी ॥ २ ॥ प्रकट प्रकाश ज्ञान गुरु गम्मित सतगुरु ते सुधिपाई। दास कबीर तासु मदमाता उचकि न कबहूं जाई ॥ ३ ॥

हरि रस महंगा पिवै सो, छाडि जीव की बान।
माथा सांटे हरि मिले, तौ भी सुहंगा जान ॥६॥
अवधूता अबिगत रता, आशा अकल अजीत।
नाम अमल माता रहै, जीवन मुक्त अतीत ॥
आठ गांठ को पीन को, मन नाहिं आनै शंक।
नाम अमल माता रहे, कहे इन्द्र को रंक ॥
रसपीया क्यों जानिये, उतरे नहीं खुमार।
मतवाला घूमत फिरै, नाहीं तन की सार ॥
सबै रसायन मैं किया, हरिसा और न कोय।
रति यक तन मे संचरे, सब तन कंचन होय ॥१०॥
एकन चौडे छाकिया, एकन पिया तेहि धोय।
कल कल भाठी जिन न पिय,रहा कलाला सोय ॥

गौडी। गगन रसाल चुवै मोरे भाठी। संचित महारस तन भया काठी
वाको काहिय सहज मतवारा। पीवत राम रस ज्ञान विचारा ॥
सहज कलालिन जो मिलि आई। आनन्द माते अनदिन जाई ॥
चीन्हत चित निरंजन लाया। कहै कवीर तब अनुभव पाया ॥ १

कहत सुनत युग जात है, बिष नहिं सूझै काल ।
कहै कबीर रे प्राणिया, बाणी बूझ सम्हाल ॥ १२ ॥
राता माता नाम का, पिया प्रेम अघाय ।
साधू मतवाला दीदारका, मागै मुक्ति बलाय १३ ॥
राता माता नामका, मदका माता नाहि ।
मदका माता जो फिरे, सो मतवाला नाहि ॥
हरि रस तो सूभर भरा, कोइ न पीवै नीर ।
भाग बडा सो पीवही, भरि भरि पिया कबीर ॥
अमृत केरी मोटरी, राखी सतगुरु छोरि ।
आप सरिखा जो मिलै ताहि पिलावै घोरि ॥
अमृत पीवेते जना, सतगुरु लागा कान ।
वस्तु अगोचर मिलगई, मन नाहि आवै आन ॥
साधू सीप समुद्रके, सतगुरु स्वाती बुन्द ।
तृषा गई यक बुन्द से, क्या ले करूं समुन्द ॥ १८ ॥

⊛ ॥ इति रसका अंग ॥ १८ ॥ ⊛

६७४+१८=६९२ साखी

❀ ॥ अथ हेरतका अंग ॥ १९ ॥ ❀

हेरत हेरत हे सखी, हेरत गया हेराय।
बुन्द समानी समुद्र में, सो कित हेरी जाय ॥ १ ॥
हेरत हेरत हे सखीं, रहा कबीर हेराय।
समुद्र मसना बुन्द में, सो कित हेरा जाय ॥
बुन्द समानी समुद्र में, सो जाने सब कोय।
समुद्र समाना बुन्द में, जाने बिरला लोय ॥
एक समाना सकल में, सकल समाना ताहि।
कबीर समाना बूझ में, जहां दूसरा नाहि ॥
गुरु नही चेला नही, न मुरीद नहीं पीर।
एक नही दूजा नही, बिलम्बे तहां कबीर ॥
वृत्त जो ढूंढे बीज को, बीज बृक्ष के माहि।
ज़ीव जो ढूढै ब्रह्म को, ब्रह्म जीव के माहि ॥
आदि होता सब आपमें, सकल होता ता माहि
ज्यों तरुवर के बीज में, डार पात फल छांहि ॥
लोह मध्ये हथियार ज्यो, लोह हथियार के माहि

ब्रह्म मध्ये जगत है, ब्रह्म जगत के माहि ॥ ८ ॥

❀ ॥ इति हेरत का अंग ॥ १९ ॥ ❀

❀ ॥ अथ लवका का अंग ॥ २० ॥ ❀

काया कमण्डल भरि लिया, उज्वल निर्मल नीर ।
पीवत तृषा न भाजही, तृषा वन्त कबीर ॥ १ ॥
मन उल्टा दरिया मिला, लागे मलि मलि नहान ।
थाहत थाह न आवई, सो पूरा रहमान ॥ २ ॥

❀ ॥ इति लवका का अंग ॥ २० ॥ ❀

❀ ॥ अथ लव का अंग ॥ २१ ॥ ❀

सुरति ढेक लीने जलो, मनानित ढोलन हार ।
कमल कुवां में प्रेमरस, पीवै बारम्बार ॥ १ ॥
गंगा जमुना उर अन्तरे, सहज सुरति लौ घाट ।
तहां कबीरा मठरचा, मुनिजन जोवै बाट ॥
जेहि बन सींह न संचरे, पच्छी उड़ि नहि जाय ।
सो बन कबिरा हेडिया, शून्य समाधि लगाय ॥ ३ ॥
(यहि मोटा भाग कबीर को, तहां रहे लौलाय) ॥

लौ लागी तब जानिये, छूट कबू नाहिं जाय।
जीवत लव लागी रहे. मुये तहाहि समाय ॥ ४ ॥
जब लागि कथनी हम कथी, दूजे रहे जगदीश।
लव लागी पल ना पड़ै, अब बोलन नाही दीश॥
अर्थ माहिं ग्रन्थ पाइया, ग्रन्था माही मूल।
लौ लागी निर्मल भया, मिटगया संशय शूल ॥

॥ इति लव का अंग ॥ २१ ॥

६९२+८+२+६=७०८ साखी

॥ अथ जरना का अंग ॥ २२ ॥

भारी कहूं तो बहु डरूं, हलका कहूं तो सीठ।
मैं क्या जानूं राम को, नयनन कबूं नाहिं दीठ ॥
दीठा है तो कस कहूं, कहूं तो को पतियाय।
हरि जैसा को तैसा अहै, तू हरषि २ गुण गाय॥
ऐसी अद्भुत मत कथो, कथो तो कहो छिपाय
बेद किताबा ना लखे, क्योंकर जग पतियाय॥
कर्ता की गति अगम है, तू चल अपने उनमान

धीरे धीरे पांव धर, पहुंचेगा निर्बाण ॥ ४ ॥
पहुंचेगे तब कहेगें, अब कछु कहा न जाय।
अजहूं बेडा समुद्र में, बोल बिगूचे काय ॥
जानि बूझि जड़ होइ रहे, बल तजि निर्बल होय।
कहै कबीर ता संत का, पला न पकडे कोय॥
साखी अजर कबीर की, सीखी सुनी न जाय।
रंचक घट में संचरे, अजर अमर ह्वै जाय ॥ ७ ॥

॥ इति जरना का अंग ॥२२॥

७०८+७=७१५साखी॥

॥ अथ पतिब्रता का अंग ॥ २३ ॥

कबीर प्रीति अडी तुझ से, वो हो गुणियाला कंत।
जो हँस बोलूं और से, नील रगाऊं दंत ॥ १ ॥
नैना अन्दर आव तू, मूंद आंख तोहि लेउं।
ना मैं देखों और को, ना तोहि देखन देउं ॥
कबीर रेखा सिंदुर रू, काजल दिया न जाय।
नैन रमैया रमि रहा, दूजा कहां समाय ॥ ३ ॥

आठ पहर चौसठ घडी, मेरे और न कोय।
१ नैना माही तू बसे, निंद को ठौर न होय ॥
मेरा सांई एक तू, दूजा और न कोय ।
दूजा सांई तौ करूं जो कुल दूजी होय ॥ ५ ॥
बार २ क्या आखिये, मेरे मन की सोय ।
कुल तो उत्थल होयगी, सांई और न होय ॥
कबीर सीप समुद्र में, रटै पियास पियास ।
सकल समुद्र तिनका गिने, स्वाति बूंद की आस॥
वा सुख माथे सिल पडो, हरि हृदया से जाय।
बलिहारी वा दुख को, पल पल राम कहाय ॥
जो कि एको जानिया, तो सब जाना जान।
जो कि एक न जानिया, सबही जान अजान॥
जो कि एक न जानिया, बहु जाने क्या होय।

---

१ प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छबि कहां समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिरि जाय ॥
॥ रहिमन शतक ॥

एकहि ते सब होत है, सब से एक न होय ॥ १० ॥
यक साधे सब साधिया, सब साधे सब जाय ।
जो गहि सेवै मूलको, फूले फले अघाय ॥ ११ ॥
सब आया उस एकमें, डार पात फल फूल ।
कबीर पाछे क्या रहा, जब पकड़ा जिज मूल ॥
एक एक कै निरुवारिय, जो निरुवारा जाय ।
दोय २ मुख का बोलना. घना तमाचा खाय ॥
आशा तो यक नामकी, दूजी आश निरास ।
पानी मांही घर करै, तौ भी मरै पियास ॥
आशा तो यक नाम की, दूजी आश निवार ।
दूजी आशा मारसी. ज्यों चौपड की सार ॥
पति बूह्मा के सुख घना, जाके बूत है एक ।
मन मैली ब्यभिचारिनी, ताके खसम अनेक ॥
पति बूता के एक है. व्यभिचारिन के दोय ।
पतिबरता ब्यभिचारिणी, कहु क्यों मेला होय ॥
पतिबरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप ।

वाके एकन रोम पर, वारूं कोटि स्वरूप ॥१८॥
पतिवरता तब जानिये, रतिवो न उघडै नैन।
अन्तर गत सकुची रहै, बोलै मधुरी बैन ॥
कबीर मै तो बैठ के, सब से कहूं पुकारि।
धरा धरै सो धर कुटै, अधर धरै सो नारि ॥२०॥
सेवक हूं समरत्थ का, कोइ पूरब का भाग।
सोती जागी सुंदरी, साईं दिया सोहाग ॥
मैं सेवक समरत्थ का, कबहुं न होय अकाज।
पतिबरता नागी रहै, वाही पति को लाज ॥
मैतो कूता रामका, मोतिया मेरा नांव।
गले जेवरी प्रेम का, जब खींचे तब जांव ॥ २३॥
तूतू करते तोबा हुई, दुर दुर करते जाय।
ज्यों हरि राखे त्यों रहै, जो देवै सो खाय ॥
जो गावै सो गावना, जो जोडै सो जोड।
पति बरता साधू जना, याहि कालि में है थोड ॥
परमेंश्वर आया पाहुना, सुनो सनेही दास।

षटरस भोजन भक्तिकर, कबहुं न छाडै पास ॥
ऊंची जात पपीहरा, नवै न नीचै नीर ।
कै याचै सुरपति को, कै दुख सहै शरीर ॥
पतिबरता ऐसे रहे, जैसे चोली पान ।
तब सुख देखै पीवका, चित्त न आवै आन ॥ २८ ॥

❀ ॥ इति पति बरता का अंग ॥२३ ॥ ❀

७१५+२८ = ७४३ साखी ॥

❀ ॥ अथ मन का अंग ॥ २४ ॥ ❀

मन के मते न चालिय, छांडि जीव के बान ।
कतवारी का ताग ज्यों, फिर अपूठो आन ॥ १ ॥

सोरठ राग ॥

बुत पूजि २ हिंदू मुये, तुरुक मुये शिर नाइ ।
उइले जारे उइले गाड़े, तेरी गति दुहुन न पाई ॥ १ ॥
मनरे संसार अन्ध गहेरा । चहुं दिशि पसरयो है यह जेवरा ॥१॥
कबित्त पाढि २ कबिता मूये कपड केदारे जाई ।
जटा धारि २ योगी मुये तेरी गति इनहु न पाई ॥ २ ॥

चिंता चित्तहि बिसारिये, फिर बूझिय ज्ञान।
इन्द्री पसार निवारिये, सहज मिलैगा आन ॥ २ ॥
कबीर सेरी सांकडी, चंचल मनुआ चोर।
गुण गावै लौलीन ह्वै, कछु है मन में और ॥
मनको मारो पटकिके, टूक टूक ह्वै जाय।
बिष की क्यारी बोयकर, लुनता क्यों पछताय ॥
या मनको बिस्मिल करूं, दीठा करूं अदीठ।

द्रव्य संचि २ राजे मुये गाडिले कंचन भारी।
वेद पढि २ पण्डित मुये रूप देखिं २ नारि ॥ ३ ॥
राम नाम बिनु सबै विगूते देखहु निरखि शरीरा।
हरि के नाम बिन किन गति पाई कहि उपदेश कबीरा ॥

शब्द ॥

मन तू थकत२ थकजाय। बिन थके तेरो काज न सरिहै फिर पाछे पछताय ॥ १ ॥ जब लगि तू सजीव रहत है तबलगि परदा भाई। टूट जाय ओट तिनका की जो मन शिखर ढहाई ॥ २ ॥ सकल तेज तजि होय नपुन्सक या मति सुनु तू मेरी। जियत मृतक दशा बिचारे पावै बस्तु घनेरी ॥ ३ ॥ याके परे और कछु नाहीं या मति सब से पूरा। कहै कबीर मारो मन मंगल ह्वै रहो जैसे धूरा ॥ ४ ॥

जो घर राखूं अपना, परसर जले अगीठ ॥ ५ ॥
हृदया भीतर आरसी, मुख देखा नाहि जाय ।
मुख तो तबही देखि है, दिलकी दुबिधा जाय ॥
मनतो मिरगा भया, खेत पराया खाय ।
शूला करि करि सेकसी, धनी मिलेगा आय ॥
मन से मन मिलता नहीं, होता चित्त का भंग ।
ह्वै रह्यो काला कामती, चढै न दूजा रंग ॥
मन दिये मन पाइये, मन बिनु मन ना होय ।
मन उनमन उस अंक सो, अनल अकाशे जोय ॥
मनही को परमोधि ले, मनही को उपदेश ।
जो यहि मन को बश करै, शिष्य होय सब देश ॥
तन माही जो मन धरे, मन धरि उज्वल जोय ।

गोडी ॥ मन का स्वभाव मनहि व्यापी । मनहि मारि कवन सिधि थापी ॥ १ ॥ कवन सुमनि जोमन को मारै । मन को मारि कहहु किसे तारे ॥ १ ॥ टेक ॥ मन अन्दर बोलै सब कोई । मन मारे बिनु भक्ति न होई ॥ २ ॥ कहै कबीर जो जानै भेव । मन मधूसुदन त्रिभुवन देव ॥ ३ ॥

साहेब से सनमुख रहे, अजर अमर सो होय ॥११॥
मनही गोरख गोविन्द है, मनही औघड सोय।
जो मन राखे यतन करी, आपे करता होय ॥
मन पानी की प्रीतिडी, पडा ज्यों कपटी लोन।
खण्ड खण्ड जो मन भया, बहुरि मिलावै कौन॥
एक दोस्त जो हम किया, तिस गले लाल कबाय।
बहुतक धोबी पचिगये, तवहू रंग न जाय ॥
पानीं ते अति पातला, धुवांते आति झीन।
पवनहु ते उतावला, दोस्त कबीरे कीन ॥
पुहुप बासते पातला, सूक्षम ताका रंग।
कबीर जासो मिल रहा, कबहुं न छोडे संग ॥
मनुवा तो अन्तर बसे, बहुतक झीना सोय।
याहि लोक सचुपाइये, कबहु न न्यारा होय ॥
मन माता मन दूबला, मन पानी मन लाय।
मनको जैसे ऊपजे, तैसाही होय जाय॥
कबीर मन बिकरी पडा, गया स्वाद के साथ।

गटका खाया बरजता, अब क्यों आवै हाथ ॥
कबीर मन गाफिल भया, सुमिरण लागे नाहि ।
घणी सहेगा सासना, यमके दरगह माहि ॥ २० ॥
कोटि करम पलमें करै, यह मन विष्या स्वाद ।
सतगुरु शब्द मानै नहीं, जन्म गवावै वाद ॥
यह मन फटक पछारले, सब आपा मिटजाय ।
पगुला होय पिव पिव करै, कबहूं काल न खाय ॥
मैं ममताही मारले, घटही माहीं फेर ।
जबही चालै पीठ दे, आंकुस देदे घेर ॥
मै ममता को मारकरि, नाना करके पीस ।
तब सुख पावै सुन्दरी, पदुम झलकै सीस ॥
मैं ममता जब जायगी, तब आवैगी और ।
जब यह निश्चल होयगा, तब पावेगा ठौर ॥
कागद केरी नावरी, पानी केरी गंग ।
कहैं कबीर कैसे तरों, बडा कुसंगी संग ॥
कबीर वह मन कहां गया, जो मन होता काल ।

डूगर बूडा मेह ज्यो, गया निवाना चाल ॥२८॥
मनको मृतक जानि के, मत मानै विश्वास ।
साथ जहांलगि भयकरे, जब लगि पिंजर स्वास॥
मृतक को दावा कैसा, अबहु रही नाहि कोय।
मुवा मसाना परजले, यह कछु अचरज होय॥३०
मै जान्यो मन मर गया, मरकर हुआ भूत ।
मुआ पीछे उठि लगा, ऐसा मेरा पूत ॥
काटी कूटी माछली, छींके धरी चहोरि।
कोइक अवगुण मन बसा,दह में परी बहोरि ॥
मनुवा तो पंछी भया, उडकर गया अकाश ।
उहाही ते गिर पडा, मन माया के पास ॥
काया कजळी बन अहै, मन कुंजर मै मंत ।
आंकुश ज्ञान रतन का, फेरै बिरला संत ॥
कवीर मन गयंद है, आंकुश दैदै राखु ।
बिष की बेली परिहरो, अमृत का फल चाखु ॥३
काया देवल मन ध्वजा, विषय लहर फहराय।

मन चाले देवल चलै, ताको सर बस जाय ॥३६॥
काया कसों कमान ज्यों, पांच तत्व का बान।
मारों तो मन मृग को, नातरु मिथ्या जान॥
कबीर यह मन मसखरा, कहूं तो मानै रोस।
जामारग सांई मिलै, तहां न चालै कोस॥
मनका बहुतक रंग है, पल पल मध्ये होय।
एकै रंग में जो रहै, कोटिन मध्ये कोय॥
मन लोभी मन लालची, मन राजा मन रंक।
जो यह मन हरिको मिलै, हरिभी मिलै निशंक॥
कबहूं मन गगने चढै, कबहुंक गिरै पताल।
कबहुक मन उनमुन लगै, कबहुंक जावै चाल॥
यह मनतो परबत हुता, अबतो पाया जान।
लागी टांकी शब्द की, निकसी कंचन खान॥
मन के मारे मुनि गये, बन तजिं बस्ती मांहि।
कह कबीर क्या कीजिये, यह मन ठौहर नाहि॥
सुर नर मुनि औ सब ठगे, सो व्यापक है संग।

द्वैत दृष्टि आइ जब लगे, करत संत मत भंग ॥
सुरनर मुनि यह सब ठगे, यही लिया अवतार।
जो कोई याते बंचही, तीन लोकते न्यार ॥ ४५
तीन लोक चोरी भई, सबका धन हरि लीन।
बिना सीस का चोरवा, पडा न काहू चीन ॥
चोरवे हम भल चीन्हिया, चोरवै हमै न चीन्ह
कहै कवीर बिचारि के, हम चोरवे दिक्षा दीन॥
बिना सीस का मृग है, चहुं दिशि चरने जाय।
बांध लिया गुरु मंत्र से, राखा तत्व लगाय ॥
मन मुरीद संसार है, गुरु मुरीद कोइ साध।
गुरुके बचन जो मानही, तिनका मता अगाध॥
इन्द्री पोषै चाहसे, मन में शंका नाहि।
भाव भक्ति को यों कहै, नहीं कर्म के मांहि ॥५
जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौर।
सहजे हीरा नीपजे, जो मन राखे ठौर ॥ ५१ ॥
समुद्र लहर जो छोडिया, मो मन घणे रिसाय।

केती आवैं सामने, केती पीछे जाय ॥ ५२ ॥
कबीर लहर समुद्र की, केतिक आवे जाय ।
बलिहारी वा दास के, उलटि समावे माहि ॥
कबीर बैरी सकल है, एक जीव पर पांच ।
अपने अपने स्वाद को, बहुत नचावै नाच ॥
मूसा बिलाई एक संग, कैसे के रहिजाय ।
अचरज यक जो देखिया, हस्ती सीहैं खाय ॥
मन प्रमेंश्वर कहत हैं, मन प्रमेंश्वर आहि ।
मन प्रमेंश्वर होय रहा, शीश नवाऊं काहि ॥
प्रमेश्वर में सब गया, प्रमेंश्वर सब मांहि ।
पढै बिचारें यों कहे, हम प्रमेश्वर नाहि ॥
कबीर अपने चोरको, सब कोइ मारे डार ।
मेरा चोर मोको मिलै, तन मन वारूं झार ॥
कुम्भै बांधा जल रहै, जल बिनु कुम्भ न होय ।
ज्ञाने बांधा मन रहै, मन बिन ज्ञान न होय ॥
मन कहै कब जाइये, चित्त कहै कब जावं ।

छः मास के हीड़ते, आध कोसपर गावं ॥६०॥
मन माया तो एक है, माया मनहि समाय।
तीन लोक संशय परी, काहि कहूं समझाय ॥ ६१॥
मन माया की कोठरी, तन संशय को कोट।
बिषहर मंत्र मानै नहीं, काल सर्प की चोट ॥
मन सायर मनसा लहरी, बूडे बहे अनेक।
कहै कबीर ते बांचि हैं, जाके हृदय बिबेक ॥
चार चोर चोरी चले, पग पानही उतारि।
चारो दर थुन्नी हनी, पण्डित करहु बिचारि ॥
मन मतंग गैयर हने, मनसा भई सचान।
यंत्र मंत्र मानै नहीं, लागी उडि उडि खान ॥
मन गयंद मानै नहीं, चलै सुरति के साथ।
दीन महावत क्या करै, अंकुश नाही हाथ ॥
तन संशय मन सोनहा, काल अहेरी नित्त।
एकै डांग बसेरवा कुशल पुछौ का मित्त ॥६७॥
नैनन आगे मन बसै, रञ्ज पल करै जो दौर।

तीन लोक मन भूप है, मन पूजा सब ठौर ॥ ६८ ॥
मन स्वारथी आपै रसिक, बिषै लहर फहराय ।
मनके चलाय तन चले, जाते सर्बस जाय ॥ ६९ ॥
तन वोहित मन काग है, लख योजन उडिजाय ।
कबही दरिया अगम बहे, कबही गगन समाय ॥
जब लग दिलपर नहीं, तब लगि सब सुख नाहि ।
चारो युगईपुकारिया, सो संशय दिल माहि ॥ ७१ ॥
ई मन चंचल चोरई, ई मन शुद्ध ठगहार ।
मन मन करते सुरमुनि जहंडे, कोइ न पावे पार ॥

❀ ॥ इति मन का अंग ॥ २४ ॥ ❀

७४३+७२ = ८१५ साखी ॥

❀ ॥ अथ सूक्ष्म मारग का अंग ॥ २५ ॥ ❀

कौन देश कहां आइया, जानै कोई नाहि ।
वह मारग पावै नहीं, भूल पडे यहि मांहि ॥ १ ॥
उतते कोइ न आइया, जाको पूंछूं धाय ।
इतते सब कोइ जात है, भार लदाय लदाय ॥

नाना बाणी बोलता, सो कित गया बिलाय।
यह संशय भाजै नहीं, कवन कहै समझाय ॥ ३ ॥
सब को बूझत मैं फिरूं, रहना कहै न कोय।
प्रीति न जोडी राम से, रहना कहां से होय ॥
चलो चलो सब कोइ कहै, मोहि अंदेशा और।
साहिब से परिचा नहीं, पहुंचेगे केहि ठौर ॥ ५ ॥
जाने को जागह नहीं, रहने को नहि ठौर।
कहै कबीर संत हो, अविगति की गति और ॥
कबीर मारग तो कठिन है, सके न कोई जाय।
गयेते बहुरे नहीं, कुशल कहै को आय ॥
कबीर का घर शिखर पर, जहां सिलहिली गैल।
पावन टिकै पपीलका, पण्डित लादे बैल ॥ ८ ॥
जहां न चीटी चढि सके, राई ना ठहराय।
मनुवा जहां ले राखिये तहां पंहुंचे जाय ॥ ९ ॥

जहां काल की गमनहीं, मुवा न सुनिया कोय।
कहै कमाली बिप्र से, वहां होय तो होय ॥

या मारग तो कठिन है, मुनि जन पाव न पाथ ।
जहां कबीरा चढि गया, पकडि सतगुरु का हाथ ॥
सुर नर थाके मुनि जना, तहां न कोई जाय ।
मोटा भाग कबीर का, तहां रहा घर छाय ॥११॥
सुर नर थाके मुनि जना, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
तहां कबीरा चढि गया, सतगुरु के उपदेश ॥
कबीर हरि हथियार कर, कूडा गली निवार ।
जेहि जेहि पंथे चालना, सोइ सोइ पंथ सुधार ॥
कबीर अगमहि अगम है, अपरम्पार अपार ।
तहां मन धीरज क्यों धरे, पंथ खरा निर्धार ॥
बिना पंथ का राह है, बिन बस्ती का देश ।
बिना पिंड का पुरुष है, कहै कबीर संदेश ॥१५॥
जेहि पैडे पंडित गये, सोइ गई बहीर ।
औघट घाटी राम की, जेहि चढि रहै कबीर ॥
घाट को पानी भरै सब, अवघट भरै न कोय ।
औघट घाट कबीर का, भरै सो निर्मल होय ॥

नाहि कागद नहि लेखनी, निः अच्चर है जोय।
पुस्तक छोडि जे बांचही, पण्डित कहिय सोय ॥
नाद बिन्दते अगम अगोचर, पांच तत्व ते न्यार।
तीन गुणन तें भिन्न है, अलख पुरुष अपार ॥१६॥
चलते चलते पग थके, निपट करारा कोस।
बिनु दयाल फलका पडे, काको दीजे दोस ॥ २०॥
बाट बिचारी क्या करै, पंथी न चलै सुधारि।
राह आपनी छाडि के, चले उजाडि उजारि ॥२१॥

❁ ॥ इति सूक्ष्म मारग का अंग ॥ २५ ॥

८१५+२१=८३६ साखी ॥

❁ ॥ अथ माया का अंग ॥ २६ ॥ ❁

जग हटवारा स्वाद ठग, माया बेस्या लाय।
राम नाम गाढा गहो, जनि जावो जन्म ठगाय ॥१॥
कबीर माया जग पापिनी, फन्द ले वैठी हाट।
सब जगतो फन्दे पडा, गया कबीरा काट ॥ २ ॥
कबीर माया पापिनी, ताही लाये लोग।

पूरा किनहु न भोगिया, उनका वही बियोग ॥ ३ ॥
कबीर माया पापिनी, हरिसे करे हराम ।
मुख कडुआली कुमति की, कहन न देवै राम ॥
कबीर माया पापिनी, मागी मिलै न हाथ ।
मनाहि उतारो झूठकरि, लागी डोलै साथ ॥
कबीर माय अरु बेश्या, दोनों की यक जात ।
आवत सो आदर करै, जात न पूछै बात ॥
मैं जानूं हरि से मिलूं मो मन मोटी आस ।
हरि बिच पाडै अन्तरा, माया बड़ी जो पास ॥
कबीर माया मोहिनी, मोहे जान सुजान ।
भागे ही छूटै नहीं, भरि भरि मारै बान ॥
कबीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खांड ।
सतगुरु की कृपा भई, नातर करती भांड ॥
कबीर माया मोहिनी, सब जग घाला घानि ।
कोइ यक साधू ऊबरा, तोडी कुल की कानि ॥ १० ॥
कबीर माया मोहिनी, भई अंधियारी लोय ।

जे सूता तेहि मूसि लिया, रहे बस्तु को रोय ॥११॥
कबीर माया मोहिनी, सब काहू को खाय ।
दांत उपाडूं पापिनीं, जो सन्त नियरे जाय ॥
माया दासी दास की, उभी दे आसीस ।
बिलसे अरु लातांछडी, सुमिरि २ जगदीस ॥
माया मेरे रामकी, मोदी सब संसार ।
जापर चिट्ठी ऊतरे, सोई विलसन हार ॥ १४ ॥
माया गुण की बादली, तितरा वाली छांहि ।
बाहर रहा सो ऊबरा, भींगा मंदिर मांहि ॥१५॥
मोटी माया सब तजै, झीनी तजी न जाय ।
पीर पैगम्बर औलिया, झीनी सब को खाय ॥
माया आगै जीव सब, ठाढे भये कर जोरि ।
जिन सिरजे जल बुन्द से, तिन से बैठा तोरि ॥
मै मेरी के कारने, हरि से बैठा तोरि ।
माया करक कदीम है, केते गये निचोरि ॥१८॥
माया के झक जग जरै, कनक कामिनी लागि ।

कहै कबीर कस बाचि है, रुई लपेटी आगि ॥
कबीर माया चूहडी, जौ चुहडे की जोय ।
साई साथि बिछूडि के, रही निराली होय ॥२०॥
इस माया जग भर्मिया, सबको लगी उपाध ।
या तारण के कारणे, जग में आया साध ॥
कबीर इस संसार की, झूठी माया मोह ।
जेहि घर जिता बधावना, तेहि घर तेता द्रोह ॥
भूले थे यहां आय के, माया संग भुलाय ।
सतगुरु राह बताइया, फेरि मिलूं पण जाय ॥
अलख चितेरे करबिना, रचि माया का भवन ।
काया कर्म वश ह्वै रहा, ना जानूं पति कवन ॥
माया दीपक नर पतंग, भरमि भरमि महि परंत ।
कोइ यक गुरु ज्ञानते, उबरत साधू संत ॥ २५॥
होय जाय आये रहै, माय के बिस्तार ।
अचल अखण्ड अगाध अज, मुद्रा नाम अपार ॥
माया से माया मिलै, दै दै अंग शरीर ।

चशमा से चशमा मिलै, ताकू मिलै कबीर ॥
सौ पापिन की मूल है, एक रूपैया रोक।
साधू जन संग्रह करै, हारै हरिसा थोक ॥
माया अतिथि के संग रही, सदा करै विकार।
कहै कबीर कैसे पचे, माखी गला अहार॥ ३० ॥
माया है दोय भांति की, देखी ठोक बजाय।
एक मिलावे राम को, एक नरक ले जाय ॥ ३१ ॥
एक माया है ईश्वरी, एक आसुरी जान।
कहै कबीर बिचारि के, दोऊ कीन बखान ॥
या माया है चूहडी औ चुहरे की जोय।
बाप पूत अरुझाय के, संग न काहु की होय ॥
माया के बश सब परे, ब्रह्मा विष्णु महेश।
नारद सारद सनक औ, गौरी पूत गणेश ॥३४॥
आंधी आई ज्ञान की, ढही भरम की भीति।
माया टाटी उडि गई, लगी राम से प्रीति ॥३५॥
॥ इति माया का अंग ॥ २६ ॥

॥ अथ तृष्णा का अंग ॥ २७ ॥

कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय ।
शीश चढाय गांठरी, जात न देखा कोय ॥ १ ॥
कबीर तृष्णा पापिनी, तासे प्रीति न जोड ।
पैग २ पीछे पडै, लागै मोटी खोड ॥ २ ॥
तृष्णा सींची ना बुझै, दिन दिन अधिकी लाय ।
ज्वासा का रूख ज्यो, घन में हाक मिलाय ॥

॥ फुटकर साखी ॥

तृष्णा केरि बिशेषता, कहां लागि करौ बखान ।
देह मरे इन्द्री मरे, तृष्णा न मरे निदान ॥ १ ॥
तृष्णा है की डाकिनी, की जीवन का काल ।
और २ निस दिन चहै, जीवन करै बिहाल ॥ २ ॥
तृष्णा अग्नि परलय किया, तृप्ति न कबहूं होय ।
सुरनर मुनि औ रंक सब, भस्म करत है सोय ॥३॥

कबीर जग की कहा कहूं, भव जल बूडे दास ।
पार ब्रह्म पति छाडि के, करै मनुष की आस ॥
रामहि थोडा जानि के, दुनियां आगे दीन ।
जीवन को राजा कहै, तृष्णा के आधीन ॥
संसारी से प्रीतिडी, सरा न एको काम ।
दुबिधा में दोऊ गया, माया मिली न राम ॥ ६ ॥

❀ ॥ इति तृष्णाका अंग ॥ २७ ॥ ॥ ❀

८३६+३५+६ =८७७साखी ॥

॥ अथ आशा का अंग ॥ २८ ॥

आशा जीवै जग मरे, लोक मरे मर जांहिं ।
धन संचय सो भी मरे, उबरे सोधन खाहिं ॥ १ ॥

निर्धनि कछुक धन चहै, धनिक चहै विशेष ।
विशेषहूं बिशेष चहे, होवन चहे नरेश ॥ ४ ॥
नरेश चहै इन्द्र पद, इन्द्र चहै रणजीति ।
असुर चहै सुपति बनन, यह तृष्णा की रीति ॥ ५ ॥

॥ पूर्ण साहब कृत वैराग शतक से ॥

बाढ चढंती बेलरी, उरझी आशा फन्द ।
टूटै पै छूटै नहीं, हुई जो बाचा बन्द ॥ ३ ॥
आशा बेली कर्म बन, बाढत मन के साथ ।
तृष्णा फूल चौगान में, फल करता के हाथ ॥
जो तू चाहे मुझी को, मत राखे कछु आस ।
मुझी सरीखा ह्वै रहो, सब सुख तेरे पास ॥
आशा मनसा दोय नदी, तहां न पग ठहराय ।
इन दोनो को लांघि के, चौडे बैठा जाय ॥५॥

आशा धन तिया पूत्र की, जीवन आशा होय ।
आशा स्वर्ग सिद्धि मुक्ति की, आशा बन्धन लोय ॥
बिषय थके इन्द्री मरै, आशा मरै न कोय ।
देह मरै ते अमर है, देह धरावत दोय ॥ २ ॥
आशा सोइ जग फांस है, सब जीवन दुख खानि ।
जीव भर्भावे ज्ञान हरे, ताते त्यागो जान ॥ ३ ॥
भोग बिषय तिया कुटुम्बसब, अन्त तोही तजिजाय।
ताते समुझ बिचारि के, तुमहि न तजो किनभाय ॥

चौड़े बैठा जाय के, नाम धरा रण जीति ।
साहब न्यारा देखिया, अन्तर गति की प्रीति ॥

आशा आस जग फंदिया, रहा अधर लपटाय ।
नाम आश पूरण करै, सब आशा मिटि जाय ॥

आसन मारे क्या भया, मुई न मन की आस ।
ज्यों तेली के बहल को, घरही कोटि पचास ॥८॥

जिन को आशा लागि है, तिनते दुखित न और ।
आशा त्यागि निराश भये, सोई सुख के ठौर ॥ ५ ॥

आदि अन्त अरु मध्य में, आशा दुख की रास ।
स्वर्ग नर्क भुगतावई, आशा परबल फांस ॥६॥

ताते आशा त्यागिय, देह गेह की जान ।
नास्ति सुख के कारणे, क्यों होवे बंध मान ॥ ७ ॥

आशा ते दुख और नहीं, आशा दुख को रूप ।
जाकी आशा सब छुटी, सो सुखिया सुख स्वरूप ॥८॥

॥ पू० सा० कृ० बैराग श० ॥

आशा छूटै भय मिटै, छूटै जग ब्यवहार ।
कहै कबीर तब जानिये, ब्रह्म लिया अवतार ॥६॥

❀ ॥ इति आशा का अंग ॥ २८ ॥ ❀

८७७+६=८८६ साखी ॥

❀ ॥ अथ लोभका अंग ॥ २६ ॥ ❀

पूत प्यारे पिता के, संगरे लागा धाय ।
लोभ मिठाई हाथ दे, आपन गया भुलाय ॥ १ ॥
डारी खांड पटकि के, मनमें रोस उपाय ।
रोता रोता मिलगया, पिता प्यारे जाय ॥ २ ॥
लोभे जन्म गवाइया, पापे खाया पुण्य ।
साधी सो आधी कहै, तापर मेरा खुन्य ॥ ३ ॥

❀ ॥ इति लोभका अंग ॥ २९ ॥ ❀

❀ ॥ अथ मोह का अंग ॥ ३० ॥ ❀

मेरी मेरी मतकरै, मेरी मूल बिनाश ।
मेरी पगकी पखंडी, मेरी गलकी फास ॥ १ ॥
मैं मेरी बडी बलाय है, सकै तो निकसि भाग ।

क्योंकर राखूं रामजी, रुई लपेटी आग ॥ २ ॥
मकडी आप बंधाइया, तन्से तागा पूर ।
कहैं कबीर अद्भुत कथा, बेद कितेब ते दूर ॥
मकडी उतरे तार गही, फिरि चढे गहि तार ।
कहै कबीर यों मन चढै, मिलत न लागै बार ॥
पशु पैसा ना संचै, ना पहिरे पैजार ।
ना कछु राखे सोवन को, मिले न सिरजन हार ॥

❀ ॥ इति मोहका अंग ॥ ३० ॥

८८६+३+५=८९४ साखी ॥

❀ ॥ अथ मान का अंग ॥ ३१ ॥ ❀

मान बडाई कूकरी, साधुन के दरबार ।
दीन लुकाठिया बाहिरा, सब जग खाया फारि ।
मान बडाई ऊरमी, यह जग का ब्यबहार ।
दीन गरीबी बन्दगी, सतगुरु का उपकार ॥
माया तजै क्या भया, मान तजा नहिंजाय ।
जेहि माने मुनिवर ढहे, मान सबन को खाय ॥

मान बडाई ऊरमी, संतन छाडी जानि ।
पाण्डव यज्ञ पूरण भया, सुपच बिराजे आनि ॥४॥
काला मुखकरि मानका, आदर लावो अंग ।
मान बडाई छाडि के, राखो राम लव लंग ॥
मान बडाई जगत में, कूकर की पहिचान ।
प्राति किये मुख चाटही, बैर किये तन हान ॥
खंभा एक गयंद दोय, क्योकर बांधू बार ।
मान करूं तो पिव नहीं, पिय चाहै मान निवार ॥
बडा भया तो क्या भया, जैसे लम्बी खजूर ।
पंथी छांह न बैठही, फल लागे बड दूर ॥ ८ ॥
बडी बड़ाई ऊंटकी, लादे जहं लागि सांस ।
मोहकम सलीता लादि के, ऊपर बैठे फरास ॥
जहां आपा तहं आपदा, जहं संशय तहं शोग ।
कहै कबीर कैसे मिटे, दोनो दीरघ रोग ॥ १० ॥
जो मिला सो गुरु मिला, चेला मिला न कोय ।

चेला को चेला मिलै, तब कछु होय तो होय ॥११॥

॥ इति मान का अंग ॥ ३१ ॥

८६४+११=९०५साखी ॥

॥ अथ दीनता का अंग ॥ ३२ ॥

दीन गरीबी बन्दगी, साधन से आधीन ।
ताके संग मैं यों रहूं, ज्यों पानी संग मीन ॥ १ ॥
दीन लखत है सबन को, दीनहिं लखे न कोय ।
भली बिचारी दीनता, नरहू देवता होय ॥ २ ॥
दीन गरीबी बन्दगी, सब से आदर भाव ।
कहै कबीर तेई बडा, जामे बडा सुभाव ॥ ३ ॥
दीन गरीबी दीन को, द्वन्दर को अभिमान ।
द्वन्दर दोज़ख जायगा, दीन राम को आन ॥
ऊंचे पानी ना टिकै, नीचेही ठहराय ।
नीचा होय सो भर पियै, ऊंचा पियासा जाय ॥
नीचे नीचे सब तरे, जेते बहुत अधीन ।
चढे बहुत अभिमान कै, बूडे ऊंच कुलीन ॥ ६ ॥

निगसाये तो बहि गये, थांघी नाहीं कोइ ।
दीन गरीबी आपनी, करते होइ सो होइ ॥ ७ ॥

॥ इति दीनता का अंग ॥ ३२ ॥

६०५+७=६१२साखी ॥

❀॥ अथ बिनु करनी कथनी का अंग ॥ ३३ ॥❀

बिन करनी कथनी कथै, अज्ञानी दिन औ रात ।
कूकर ज्यों भूंकत फिरै, सुनी सुनाई बात ॥ १ ॥
कथनी कथी तो क्या भया, करनी नहीं ठहराय ।
काल बूत का कोट ज्यों, देखतही ढहजाय ॥
जैसी मुख से नीकरे, तैसी चालै नाहि ।
मन छन होवै स्वान गति, बांधा यमपुर जाय ॥
कथनी कच्ची होयगी, रहनी रहै ततसार ।
श्रोता वक्ता मर गये, मूरख अनन्त अपार ॥
करनी केरि जमा नहीं, कथनी कथै अपार ।
इन बातन क्यों पाइये, साहिब का दीदार ॥ ५ ॥
कबीर कथनी सुलभ है, रहनी कौन बिचार ।

ज्यों कथे त्योंही करे, तबहीं उतरै पार ॥ ६ ॥
साखी कहैं गहै नही, चाल चली नहि जाय ।
सलिल मोह नदिया बहे, पांव नही ठहराय ॥
डोम कलावन्त किरतानिया, सबही कहै कबीर ।
कहै कवीर करनी बिना, कैसे लागै तीर ॥
पंचन में फिरा करै, साधु कहो जो मोहि ।
श्वान नाम बाघा धरे, बाघ न कबहूं होहि ॥
नारि कहावै पीव की, रहै और संग सोय ।
जार सदा मनमें बसै, खसम खुशी क्यों होय ॥
चाल बकुलन की चलत है, बहुरि कहावै हँस ।
ते मुक्ता कैसे चुगै, परै काल के फन्स ॥११॥
चतुराई क्या कीजिये, जो नहि पदहि समाय ।
कोटिक गुण मावै पढ़ै, अन्त बिलाई खाय ॥१२॥
॥ इति बिनु करनी कथनी का अंग ॥३३॥
९१२+१२=९२४साखी ॥

❀॥ अथ करनी सहित कथनी का अंग ॥३४॥❀

जैसी मुखते नीसरे, तैसी चालै चाल ।
पार ब्रह्म नियरे रहे, पलमें करे निहाल ॥ १ ॥
कथनी मीठी खांड की, करणी विष की लोय ।
कथनी कथ करनी करै, विष तजि अमृत होय ॥
करनी गर्ब निवारनी, मुक्ति स्वार्थी सोय ।
कथनी कथ करनी करै, तो मुक्ताहल होय ॥
जाकी जैसी करनी, तैसी भुगतै सोय ।
सत पुरुष के भक्ति बिन, जन्म जन्म दुख होय ॥
चोर चुराया तूंबडा, गाडे पानी माहि ।
वह गाडे वह ऊछले, करनी छानी नाहि ॥ ५ ॥
जो करनी अन्तर बसै, निकसे मुख की बाट ।
बोलतही पहिचानिये, साहु चोर की घाट ॥
कबीर करनी आपनी, कबहुंन निष्फल जाय ।
सात समुद्र आडा पडै, मिलै अगाऊ धाय ॥
करनी करनी सब कहै, करनी माहि बिवेक ।

सो करनी बहि जानदे, जो न परेखे एक ॥ ८ ॥
ज्ञान गेंद चौगान की, भावै कोइ लै जाय।
कहै कबीर यामें कछु नहीं, कहां रंक कहां राय ॥
कहता हूं कहि जातहूं, देता हूं हेला।
गुरु की करनी गुरु तरै, चेला कर्नी चेला ॥ १० ॥

❁ ॥ इति करनी सहित कथनी का अंग ३४ ॥ ❁

९२४+१०= ९३४ साखी ॥

❁ ॥ इति चौरासी अंग के साखी का प्रथम अंश ॥ ❁



⊛ ॥ सतगुरु देव ॥ ⊛

⊛ अथ चाणक्य के अंग प्रारम्भः ⊛

⊛ ॥ गृही बैरागी (मिश्रित) का अंग ॥३५॥ ⊛

गृही को चिंता घणी, बैरागी को भीख।
दोनोका त्याहि बिच जीव है, संतो देहू सीख ॥ १ ॥
बैरागी बिरक्त भला, गृही चित्त उदार।
दोय बांतां खाली पडे, ताको वार न पार ॥ २ ॥
धारा तो दोही भली, गृही कै बैराग।
गृही दासातन करै, बैरागी अनुराग ॥ ३ ॥
गृही सेवै साधुको, साधू सुमिरे नाम।
यामें धोखा कछु नही, सरे दुनो का काम ॥ ४ ॥
॥ इति गृही बिरागी (मिश्रित) का अंग ॥ ३५ ॥

६३४+४=६३८ साखी ॥

॥ गुरु बोध से ॥

॥ अथ गृही का अंग ॥ १ ॥

जो मानुष गृह धर्म युत, राखै शील बिचार।
गुरु मुख बाणी साधु संग. मन बच सेवा सार १ ॥
सेवक भाव सदा रहै, अहम न आनै चित्त।
निर्णय लखे यथार्थ विधि, साधुन कोकरे मित्ति २॥
सत्य शील दाया सहित, बरते जग ब्यवहार।
गुरु साधू के आश्रित, दीन बचन उच्चार ॥ ३ ॥
बहु संग्रह विष्यान के, चित्त न आवै ताहि।
मधुकर इव सब जगतइव, घटि बढि लखि बरताहि

गुरुमत लखे सो शिष्य है, बोधे सो गुरु देव।
तारण तरण सो आपही, एकै हंसा भेव ॥ ५ ॥
गेही धर्म को लाजिम सेवा।साधूको है त्यागका भेवा॥

गेही सेवै गुरु अरु साधू। दोऊको है धर्म अबाधू ॥६॥

१ ॥ शब्द ॥ हंसा पेसो गुरुमत भारी। लखे सो भव मे आवत नाहीं भव के वहुत बेगारी ॥ १ ॥ शिष्य सिखापन गुरु की मानै गुरु साधुन आज्ञा कारी। तेई मुक्ति पदारथ पावे; यम ते रहनि निनारी ॥ २ ॥ सत्य भेष सत्य रहनि साधु की सन्त दरश अबिकारी। ते अधिकारी गुरु पारख के निर्जिव धोख निबारी ॥३॥ गुरुमुख सुख अनुमान रहित पद बसे आनन्द अटारी। प्रेम भाव संतन सेवकाई कहहि कबीर पुकारी ॥ ४ ॥

चौपाई ॥

प्रीति सदा गुरु पारख करई। संगति साधु सदा आचरई॥
उत्तममध्यमजगब्यवहारा॥निर्णय सहितकैरअनुसारा॥

गृह धर्म बड खटपट, तामे रहै हुशियार।
लोक वेद की रीति सब, करै सहित विचार ॥ ८ ॥
जीव घात आदिक करम, करै न कबहूं भूलि।
सोई रक्षा जीवन करै, प्रेम सहित अनुकूल ॥ ९ ॥
बाणी अप्रिय कहै नही, कहै सबन उपकार।
ठहरे पद बोधित गुरु, लावे भक्ति गोहार ॥ १० ॥

चारि खानि बहु जियरही, दुख दाई जो होय।
जुरे तो रक्षे जीव कहं, असकरहे चुप सोय ॥ ११॥
गुरु साधुहि सनमानही, मिथ्या जालहि त्यागि।
साचहृदये दाया सहित, निज सुख गुरु अनुरागि॥
दीन दयाल को मत लखे, शिष्य स्वतः पह थीर।
साधु गुरु सम जानिके, सेवहि मन बच धीर॥
साधुन को जल अन्नते, वस्त्र सहित करे रच्छ।
शक्य यथारथ अनुकरम, गुरु सेवक शिष्य स्वक्ष॥
गुरु साधू पद दीर्घ जग, हे शिष्य सबन प्रमान।
त्रिविधि ताहि सेवन करे, आपु दास पदमान॥
हे शिष्य जे दासातने, हंता ते तेइ भिन्न।
तेई गुरु पारख लहे, हंत कल्पना कीन ॥ १६ ॥
तेई उत्तम पारखी, गुरु मतके अधिकार।
हंता नासे शिष्य जो, हंस थीर पदसार ॥ १७ ॥
दास भाव सेवा सहित, भक्ति साधु गुरु केर।
यहि प्रकार हंसा बसे, सेवक को नहि फेर ॥१८॥

❀ ॥ सत्य शब्द टकसार ॥ शब्द ॥ ❀

झगरा एकबढो जियजान। जो निरुवारे सो निर्बान ॥
ब्रह्मबडा कि जहंते आया।बेदबडा किजिन उपजाया॥
ईमनबडा किजेहि मनमाना।राम बडाकि रामहि जाना ॥
भ्रमिभ्रमि कबिराफिरै उदास।तीर्थ बडाकि तिर्थकदास॥
यह दृष्टान्त यथा अनुक्रम, है ब्यवहार बिचार।
हंता मिटै तो दासपद, भिन्न आहि है ब्यवहार॥

॥ चौपाई ॥

निर्णयजो गुरुमुखही सूना।ताहि मनन साक्षातहुगूना
प्रेम लगावे आस्ति पदमांही। ठहरे पंचाइत गुरुपाही॥
पंचाइत गुरु न्याव की, जाको होय सहाय।
तव गेही न साधु पद, सोई गुरु पद आय ॥ २१ ॥
सुनु शिष्य गुरुमत बिमल अति, पावे गुरुसम होय।
गृह वाधा तेहि नाकरे, रहे अपनो पद जोय ॥२२॥
यहि प्रकार गृह धर्म के, लक्षण दिये बताय।
अब शिष्य बिरक्त धर्म के, लक्षण सुनहु बनाय॥

❀ ॥ बिरक्त का अंग ॥ ❀

बिरक्त बोधे देह निज, मैथुन त्यागे अष्ट ।
ठहरे रमिता भूमिपर, बोधित कालता कष्ट ॥ २४ ॥
कष्ट करे बिष्यान को, नष्ट न कतहूं होय ।
भ्रष्ट बुद्धि त्यागै भले, अष्ट याम लखे जोय ॥२५॥
अहंकार आनै नहीं, मै उत्तम यह नीच ।
एकत्व समही सम लखे, मनुष्य खानि के बीच ॥

❀ ॥ इति गुरुवोध की साखी ॥२६॥ ❀



❀ ॥ अथ बिरक्त का अंग ॥ ३६ ॥ ❀

बाजन देहु बायंत्री, कल कुकही मति छेड़ु ।
तुझे विरानी क्या परी, अपनी आप निबेर ॥ १ ॥
जाता है तो जानदे, तेरी दया न जाय ।
दरिया केरी नाव ज्यों, घना मिलेगा आय ॥
तन सराय मन पाहरू, मनसा उतरी आय ।
कोई काहू का नहीं, सब देखा ठोक बजाय ॥३॥

पानी प्यावत क्या फिरै, घर घर सायर बारि।
तृषावन्त जो होयगा, पीवेगा झख मारि ॥ ४ ॥
सबे संसार झूठ है, कोइ न अपना मीत।
सत्य नामकूं जानिले, चले सो भवजल जीत॥
निसरा पण बिसरा नहीं, तौ निसरा कछु नाहि।
पहिले खाय उखेलिया, सो फिर खावै ताहि॥
जो बिभूति साधन तजी, मूढ ताहि लपटाय।
ज्यों नर डारत बमन करि, श्वान स्वादसो खाय॥
राम बिना बेकाम है, छप्पन भोग बिलास।
क्या इन्द्र का बैठका, क्या बैकुण्ठ का बास ॥८॥
मन फाटे चित ऊचटे, नयना नहीं समाय।
पलकों की टाटी दिये, टेढो टेढो जाय ॥ ९ ॥
ज्यों प्यादा फरजी भया, टेढो टेढो जाय।
बडा बडाई ना तजै, छोटा बहु अंतराय ॥१० ॥
मन मानिक जब ऊचटे, नेक नहीं ठहराय।
ज्यों कंचन की भूमि करै, हारियल धरै न पांय॥

जब मेरे मन परि गई, ऐसी एक दरार।
फाटा फटिक पषाण ज्यों, मिला न दूजी बार॥
चन्दन भांगा गुण करै, जैसे चोली पान।
ये दोय मांगा ना मिलै, यक मोती अरुमान ॥१३॥
मोती भांगे बीधता, मन भांगे यक बोल।
बहुत स्याना पचि गया, परि गई गाठी गोल॥
पास न जिन के कापडा, कदी सुरंग न होय।
कबीर त्यागे ज्ञान करि, कनक कामिनी दोय॥
चित्त चैतन गरक रहो, जाग न देखो मन्त।
कित कित ही सिल पाडिहो, गल बल शहर अनंत॥

❀ ॥ इति विरक्त का अंग ॥ ३६ ॥ ❀

९३८+१६ = ९५४साखी

॥ अथ मिथ्या बिरक्त के अंग ॥

❀ सन्यासी का अंग ॥ ३७ ॥ ❀

याहि कलियुग तो कठिन है, साधु न मानै कोय।
लालची लोभी मसखरा, तिन का आदर होय ॥१॥

हरि सुमिरण सांची कथा, कोइ न धारै कान ।
कलियुग पूजा भांड की, बाज़ारी कामान ॥ २ ॥
स्वामी तो हुये सेंति के, पैसा केर पचास ।
राम नाम धन बेंचि के, करै शिष्य का आस ॥
स्वामी होना सोहरा, दोहरा होना दास ।
गाडर आनी ऊन को, बांधी चरै कपास ॥
इसी उदर के कारणे, जग याचे निशि याम ।
स्वामीपण जो शिर चढ्यो, सर्यो न एको काम ॥
प्रतिष्ठा की जो टोकनी, लिये फिरै है साध ।
राम नाम जानै नहीं, जन्म गवावैं बाध ॥
कलिका स्वामी लोभिया, पीतल धरै खटाय ।
राजद्वारे यों फिरै, ज्यों हरियाली गाय ॥
राजद्वारे राम जन, तीन बस्तु को जाहिं ।
कै मीठा कै मान को, कै माया की चाहि ॥
औरन को परमोधते, खायो घरका खेत ।
राशि बिरानी राखते, मुहडे पडि गयो रेत ॥ ९ ॥

तारा मण्डल बैठिके, चन्द्र बडाई खाय ।
उदय भया जब सूरका, सब तारा छिपजाय ॥१०॥
कबीर स्वामी कोइ नाहि, स्वामी सिर्जन हार ।
स्वामी होकर बैठही, घणी सहै शिरमार ॥ ११ ॥

❀ ॥ बैरागी का अंग ॥ ३८ ॥ ❀

बाना पहिरे सिंहका, चले भेड की चाल ।
बोली बोलै गीदड की, खाय कुत्ता फाल ॥ १ ॥
बातं बनाई जग ठगा, मन परमोध्या नाहि ।
कबीर स्वारथ लेगया, लख चौरासी मांहि ॥
हम जान्या तुम मगन हौ, रहे प्रेम रस पागि ।
रंचक पवन के लागते, उठे नाग से जागि ॥
जाके हृदये हरि नहीं, शिष्य शाखा की भूख ।
तेनर ऊभा सूखसी, ज्यों बन दाध्या रूख ॥
शिष्य शाखा संसार गति, सेवक प्रत्यक्ष काल ।
बैरागी छावै मढी, ताको मूल न डाल ॥ ५ ॥
पद गावै मन हरषि के, साखी कहै आनन्द ।

...त्व मूल न जानिया, गले में डाला फन्द ॥ ६ ॥
कबीर या संसार को, समझायो सौ बार ।
पूंछ तो पकडे भेंड का, उतरन चाहे पार ॥ ७ ॥

दुर्वेश ॥

शेख सबूरी बाहिरा, कहां हजको जाय ।
जिसका दिल साबित नहीं, तिसको कहां खुदाय ॥ १ ॥

❀ ॥ इति विरक्त के अंग ॥ । ३७ । ३८ ॥ ❀

१५४+११+७+१=१७३ साखी ॥



सन्यासी शव्दका अर्थ है त्यागी, ये जो गिरी पुरी आदि नामके सन्यासी हैं, त्यागी तो इनमें कोईही पुरुष होगा, बहुधा तो मठधा-री धनी तथा चेला, चेली, स्त्री, पुत्र, क्षेत्र, मान, मर्यादा आदि में आशक्त है, अथवा जो स्वामी बन अपने को बिरक्त मानते हैं वे भी वादानुवाद के कारण राज द्वारों और न्याय शालाओं में मारे २ फिरते तथा अनेक अपमान को सहा करते हैं, यथार्थ थिचार से देखा जाय तो इन पक्ष पातियों मे अपने को महा पुरुष कहलाने में तत्पर रहने तथा अपने कोसब से बड़ा माननेकी मूर्खताके सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं पाया जाता ॥

बिरागी शब्द का अर्थ है कि जिसके हृदय से सर्व पदार्थों का राग दूर होगया हो। बड़े आश्चर्य की बात है कि देह, गेह, मन्दिर पक्ष, पदार्थ, प्रतिष्ठा आदिक में तो राग उनका गृहस्थों से भी अधिक है परन्तु अपने को बिरागी कहने और कहलाने मे ही आनन्द अनुभव करते हैं ॥

योगी शब्द का अर्थ योग वाला है सो जिसका सत्य पदार्थ से योग हुआ उसका नाम योगी। काषाय वस्त्र तथा नाद मुद्रादि चिन्हो का नाम योगी नहीं ॥

बड़े शोक की बात है कि सत्य पदार्थ से संयोग तो अलग उसका नामतक नहीं जानते बल्कि कांली कराली, बाला, सुन्दरी भूत, चुडैल, योगिन आदि के मिथ्या भ्रम में रहकर सदा भांग तम्बाकू, गांजा, चरस, मद्य, मांस, आदि के ऐसे दास बने होते हैं कि छण मात्र उसके विना नहीं रह सक्के जिस से पास के वस्तु तथा शरीर बस्त्रादि की विजुली ऐसी दुर्गंधित होजाती है कि यदि कोइ शुद्ध पुरुष जावे तो मारे दुर्गंधी के मसतिष्क खराब होजाता है ॥

परन्तु व्यवहारी संसारी लोग उनके झूठे मन्त्र, तन्त्र सिद्धि आदि के गपाटा मे पड़ महान योगी महात्मा समझ कर अपने धर्म को भ्रष्ट करते हैं ॥

इसी प्रकार से उदासीन आदि शब्दों के अर्थ को समझ विचार कर पारख संयुक्त हो सच्चे का संग करना चाहिये ॥

सवैया ॥

जेतिक लोग अहैं मन भूतल ज्ञान बिना नहिं देखि परैरे ।
जासन मूढ कहौ सो लड़ै उठि साधु कहै हित सो बिचरैरे ॥
त्यागत नाहिं मान की पद्धति ज्ञानिन को संग कौन करैरे ।
मङ्गल तू बड़ मूरख या जग मान कुमारग पांव धरैरे ॥५८९ ॥
मान गहैं भव बीथिनि भ्रामिक आनि हिय मुख आन कहैरे ।
वेदकितेब न अक्षर जानत आतम भावहि धाय गहैरे ॥
आलस के वश होत परिश्रम नाहिन भिक्षुक भाव लहैरे ।
मंगल शिष्य किये धन के हित दम्भ गरयो नहिं सत्य अहैरे ॥
सप्त शतिका मं० दा० कृ० ॥

गंगातट गिरिवर गुहा, उहां कहां नहिं ठौर ।
क्यों एते अपमान सों, खात परायो कौर ॥
इन्द्र भये धनपति भये, भये शत्रु के शाल ।
कल्प जिये तौऊ गये, अन्तकाल के गाल ॥
॥ वैराग्य मञ्जरी ॥



❀ ॥ अथ नारी का अंग ॥ ३९ ॥ ❀

कामिनि मीठी खांडसी, ज्यो छेडे त्यों खाय।
जे हरि चरणे रांचिया, तिनके निकट न जाय ॥१॥
नारि नसावै तीन गुण, जेहि नर पीछे होय।
भक्ती मुक्ति औ ज्ञान मे, पैठि न सकिहे सोय॥
नारी कहूं की नाहरी, नख शिख सूधी खाय।
जल बूडा तो उबरे, भग बूडा बहि जाय ॥
सेवक अपना करि लइ, आज्ञा मेटै नाहि।
भग मंत्र दे गुरु भई, शिष्य हो सबै कमाहि ॥
फटी कान्न की बाघिनी, तीन लोक को खाय।
जीवत फाडै काल ज्यों, मुये नर्क ले जाय ॥ ५॥
नारी नही यह नाहरी, करै नयन की चोट।
कोइ यक हरिजन ऊबरे, गुरु पूरा की ओट॥
जोरू झूठ जगत की, भला बुरा के बीच।
उत्तम नर अलगा रहै, मिमि खेलै ते नीच ॥
नारी कुण्डी नरक की, बिरला थांभे बाग।

कोइ साधू जन ऊबरे, सब जग मूआँ लाग ॥ ८ ॥
रम्भा रमणी अप्सरा, त्यागो तत्व बिचार ।
सुरनर मुनि जन बसकिये, येही थोथि भंगार ॥ ९ ॥
नारी नहीं यह यम है, तूमति जानै दासि ।
मंजारी झीनी बोलिके, काढि कलेजे खासि ॥ १० ॥
नारी नदिया सारखी, बहै अपरबल पूरि ।
साहेब से न्यारा करै, अन्त पडै मुख धूरि ॥
नारी नदिया अथाहजल, बूडि मुआ संसार ।
ऐसा साधू ना मिला, जा संग उतरूं पार ॥
ब्याहा व्याहा क्या करै, बोरया मेरी माय ।
शक्कर भात खवाइ के, बेडी ठोकी पाय ॥ १३ ॥
रंचक लांवण्य के पडे, अंधा होत भुवंग ।
कबीर ताकी कवन गति, नित नारी के संग ॥
नारी तो सबही करे, जाने नहीं बिचार ।
जो जाने सो परिहरे, नारी बडी बिकार ॥ १५ ॥
❀ ॥ इति नारी का अंग ॥ ॥ ३६ ❀

❀ ॥ परनारी का अंग ॥ ४० ॥ ❀

परनारी पैनी छुरी, बिरला बांचे कोय ।
ना वहि पेट संचारिये, सर्ब सोन को होय ॥ १ ॥
परनारी पैनी छुरी, मत कोइ लाओ अंग ।
रावण के दसशीश गये, परनारी के संग ॥ २ ॥
परनारी राता रहे, चोरी बैंठा खाय ।
दिवस चारि सिर साहरे, अन्त समूलो जाय ॥३॥

❀ ॥ कनक कामिनी का अंग ॥ ४१ ॥ ❀

कामिनि काली नागिनी, तीनलोक मझारि ।
राम सनेही ऊबरे, विषयी खावे फारि ॥ १ ॥
कबीर कनक अरु कामिनि, ये नंगी तलवारि ।
निकसे थे हरि मिलन को, वीचहि लीया मारि ॥
चलो चलो सब कोइ कहे, पहुचे बिरला कोय ।
एक कनक अरु कामिनी, दुर्लभ घांटी दोय॥ ३ ॥

❀ ॥ कामी पुरुष का अंग ॥ ४२ ॥ ❀

कामी लज्या ना करे, मन माही अहलाद ।

नीद मागे साथरा, भूषन मागै स्वाद ॥ १ ॥
कामी अमी न भावही, विषही को ले सोधि।
कुबुधि न भागै जीवकी, भावै ज्यों प्रमोधि ॥
काम करम की काचली, पहिर भया नरनाग।
शिर फोरै सूझै नहीं, पूरब केर अभाग ॥ ३ ॥
कबीर कामी नरनका, संशय कबहुं न जाय।
साहेब से अलगा रहै, वाके हृदये लाय ॥
कामी क्रोधी लालची, इनते भक्ति न होय।
भक्ति करे कोइ शूरमा, जाति बरण कुल खोय ॥
भक्ति बिगाडी कामिया, जिभ्या इन्द्री स्वाद।
हीरा खोया हाथसों, जन्म गंवायो बाद ॥ ६ ॥
भक्त कहावे रामका, चुटकी चून न देइ।
शिष्य जोरू का ह्वै रहा, नाम गुरू का लेइ ॥
सूम थैली रू स्वान भग, दोनो एक समान।
घालतही सुख ऊपजे, काढत निकसे प्राण ॥ ८ ॥

❀ ॥ इति कामी पुरुष का अंग ॥ ४२ ॥ ❀

❀ ॥ कामका अंग ४३ ॥ ❀

काम काम सब कोइ कहे, काम न जानै कोय।
जेती मनकी कल्पना, काम कहावै सोय ॥ १ ॥
काम कहर अस्वार है, सबको मारै धाय।
कोइक हरिजन ऊबरे, जाको राम सहाय ॥
दीपक सुन्दरता देखिके, जल जल मरै पतंग।
बढी लहरि जो विषयकी, जलत न मोडे अंग ॥
कामी का गुरु कामिनी, लोभी का गुरु दाम।
कबीर का गुरु संत है, संता का गुरु राम ॥ ४ ॥

❀ ॥ काम निवारणका अंग ॥ ४४ ॥ ❀

नारी सेती नेह, बुद्धि बिवेक सबहीं हरै।
कहां गंवावै देह, कारज काइ ना सरै ॥ १ ॥
नारी निरखि न देखिय, निरखि न कीजे दौर।
देखतही पै विष चढै, मन में आवे और ॥
कबीर जोपर देखिये, बीर बहिन के भाय।
आठ पहर अलगा रहे, ताको काल न खाय ॥३॥

नाना भोजन स्वाद सुख, नारी सेती रंग ।
बेगि छाड़ु पछतावगे, मूरति होसी भंग ॥
बयरी बैरी एक है, भूल करो मत कोय ।
याही में मरि जावगे, मुक्ति कहां से होय ॥ ५ ॥
इस भग केरी प्रीत से, केते गये गडंत ।
केते अजहूं जायंगे, नरक हसंत हसंत ॥
भग भोगे भग ऊपजा, भग से बचा न कोय ।
कहैं कबीर भग से बचे, भगत कहावै सोय ॥
जब लग भक्ति सहकामता, तबलागि निष्फल सेव ।
कहै कबीर वह क्यों मिलै, निः कामी निज देव ॥
सहकामी दीपक दशा, सोखै तेल निवास ।
कबीर हीरा संतजन, सहजे सदा प्रकास ॥
नर नारी सब नरक है, जबलगि देहि सकाम ।
कहै कबीर सो रामका, जो सुमरै निः काम ॥ १० ॥
एक कनक अरु कामिनी, तजिय भजि दूरि ।
हरि बिच पाडै अन्तरा, यम देसी मुख धूरि ॥

एक कनक अरु कामिनी, इनसे रहिये दूरि।
जपतप संयम लेत हैं, मुहढे देके धूरि ॥१२॥
विषय प्यारी प्रीति से, तब हरि अन्तर नाहि।
जब हरि अन्तर बसै, विषय से रुचि नाहि ॥
जहां जलाई सुन्दरी, तहां जानिजाय कबीर।
उडकर भस्मी लागसी, नासे समाइ शरीर ॥
काम क्रोध मदलोभ की, जब लग घटमें खान।
क्या मूरख क्या पण्डिता, दोनों एक समान ॥ १५ ॥
केते काम बाहिगये, केते बहेंगे आय।
ऐसो भेद बिचारि के, तू जनि नियरे जाय ॥
जेहि जेवरी जग बंधा, तू जानि बंधै कबीर।
जासी आटा लून ज्यों, सो नाशमान शरीर ॥
काम मिलावै रामको, जो कोइ जानै राख।
कहै कबीर मै क्या कहूं, शुकदेव बोलै साख ॥१८॥

❀ ॥ इति काम निवारण का अंग ॥ ४४ ॥ ❀

९७३+१५+३+३+८+४+१८=१०२४ साखी ॥

॥ अथ शीलका अंग ॥ ४५ ॥

शील क्षमा जब ऊपजे, अलख दृष्टि तब होय।
बिना शील पहुंचे नहीं, कोटि कथे जो कोय ॥ १ ॥
शीलवंत सबते बडा, सर्ब रतन की खान।
तीन लोक की सम्पदा, धरी शील में आन ॥ २ ॥
आव कहै सो औलिया, बैठ कहे सो पीर।
जा घर आव न बैठ है, सो काफिर बे पीर ॥ ३ ॥

॥ इति शील का अंग ॥ ४५ ॥



॥ मानुष बिचार से ॥

दुसरे शील विचार के अंगा। सब स्थूल अंग है भंगा ॥
बुरा कर्मसे लज्या करे। बिना बिचार के पगु नहिं धरे॥
जोकाहूके होय उपकारा।मन बचकर्म करिलिय विचारा
मानुष भरशक चूके नाहीं।आखिर होयदोष नहिताही
पशुवा होयसो आंखछिपावे।मातुष बुधिसपने नहिंपावे
जिनकी आंख शील नहिंहोई।कालरूप जानिये सोई॥

बिना शील बे पीर कठोरा।झूठा बिषई लम्पट चोरा॥
मानुषके गुणही अधिकारा।मुये न भक्षे जेहिश्वानसियारा
अग्निजलै मिट्टी गलिजाई।हाड चामकी यही बडाई
जो नहिंभाव भक्ति बनिआवे।बिनु गुरुभवते कौनछुडावे
भक्ति हीननर पशुहै सोई।गुणवंता तैदेखु बिलोई ११॥

इति मानुष बिचार से ॥ ११ पंक्ती ॥

॥ अथ सहज के अंग ॥ ४६ ॥

सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्हैं कोय।
जा सहजे साईं मिलै, सहज कहावै सोय ॥ १ ॥
सहज २ सब कोइ कहै, सहज न चीन्हे कोय।
पाचू राखे पसरता, सहज कहावै सोय ॥ २ ॥
सहजे २ सब भया, गुण इन्द्री का नाश।
निःकामी से मन मिला, कटा कर्म का पाश ॥
सहजे २ सब गया, सुत बित्त का काम।
एक मेक ह्वै मिल रहा, दास कबीरा राम ॥ ४॥
जो कछु आवै सहज में, सोई मीठा जान।

कडुवा लागे नीब सा, जामें ऐंचा तान ॥ ५ ॥
काहे को कलपत फिरै, दुखी होत बेकाम ।
सहजे २ होयगा, जो कछु रचिया राम ॥ ६ ॥

॥ इति सहज का अंग ॥ ४६ ॥

॥ अथ धीरज का अंग ॥ ४७ ॥

धीरे धीरे रे मन, धीरे सब कछु होय ।
माली सींचे सौ घडा, ऋतु आये फल होय ॥ १ ॥
कबीर तू काहे को डरै, शिर पर सिरजन हार ।
हस्ती चढ कर डोलिये, कूकर भुसे हजार ॥
कबीर भंवर बैठि के, भैचक मना न जोय ।
डूबन का डर छाडि दे, करता करे सो होय ॥
धीरा होय करि धमक सहै, ज्यों अहिरन शिर घाय
मेघा पर्वत ह्वै रहो, पाछे काल न खाय ॥ ४ ॥

॥ इति धीरज का अंग ॥ ४७ ॥

१०२४+३+६+४=१०३७ साखी ॥

असत नाशमान के माने। बहुबिधि भय जीवनके ताने
भयते धीरज छूटै भाई। धीरज गये अधिरता आई॥
नास्तिअसत्य मानिकेत्यागो।भवधोखामें कबहुंनपागो
अधिरता सब देव उडाई।तब धीरज आपुहिं रहि जाई
होनिहार सोई तन होई।ताहि मानि जिव काहेको रोई
तू अबिनाशी सुखमें कहिये।ताहि जानि धीरतालहिये

॥ निर्णयसार ॥ ६ पंक्ती ॥

॥ अथ सांच का अंग ॥ ४८ ॥

सांच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप।
जाके हृदय सांच है, ताके हृदय आप ॥ १ ॥
सांचे श्राप न लागई, सांचे काल न खाय।
सांचै सांचा जो मिलै, ताको कहां नशाय ॥
सबते सांचा है भला, जो सांचा दिल होय।
सांच बिना सुख नाहिना, कोटि करै जो कोय॥
सांचा सौदा कीजिये, अपने मनमे जानि।
सांचे हीरा पाइये, झूठे मूलहु हानि ॥ ४ ॥

जो तू सांचा बाणिया, सांचे हाट लगाय।
अन्दर झाडू फेरि के, कूडा देइ बहाय ॥ ५ ॥
सांई सेती सांच रह, औरन ते सत भाव।
भावे लांबा केश कर, भावे घूंट मुडाव ॥
कबीर पूंजी साहु की, तू मत खोवै ख्वार।
खरी बिगुर्चन होयगी, लेखा देती बार ॥
लेखा देना सहल है, जो दिल सांचा होय।
साईं के दर्बार में, पंला न पकडे कोय ॥
भूला भसम लगाय कर, मिटी न मन की चाह।
जब लगि सिक्का नाहिं साच का, तब लगि योगी नाहिं
जाकी सांची सुरति है, ताकी सांची खेल।
आठ पहर चौसठ घडी, है साहेब से मेल ॥१०॥
प्रेम प्रीति का चोलना, पहिरि कबीरा नाच।
तन मन तापर वारिये, जो कोइ बोलै सांच ॥११॥
सांच शब्द हिरदय रहै, अलख पुरुष भरि पूर।
प्रेम प्रीति का चोलना, पहिरा सदा हजूर ॥१२॥

सांच बिना सुमिरण नहीं, भय बिना भक्ति न सो
पारस में परदा रहे, क्यों लोह कंचन होय ॥१३॥
जो तेरे दिल सांच है, बाहर मति जनाव ।
जानन हारा जानही, अन्तर गति का भाव ॥
झूठा सब जग देखि करि, करणी देउ बहाय ।
सांच नामको जानि करि, सुख दुख छाडि पराय।
सांच सुनै अरु सत्य कहै, सत्य नाम की आस।
सत्य नाम को जानकर, जग से रहे उदास ॥
अबतो हम कंचन भये, तब होते हम कांच ।
बलिहारी गुरु आपने, दिल अपना करि सांच ॥
सांच कहूं तो मारही, झूठे जग पतियाय ।
यह जग काली कूकरी, ज्यों छेडे त्यों खाय ॥
साधू ऐसा चाहिये, सांची कहै बजाय ।
कै टूटे कै फिर संधे, कहे बिनु भ्रम न जाय ॥
सांचा शब्द कबीर का, जैसे कंचन रेश ।
झूठा को चाणक लगे, सांचा को उपदेश ॥ २०

सांचा शब्द कबीर का, प्रगट कहा जगमांहि ।
जैसे को तैसा कहे, सो तो निन्दा नाहि ॥ २१ ॥
झूठा को झूठा मिलै, अधिकि बँधै सनेह ।
झूठा को सांचा मिलै, तबही टूटै नेह ॥
कबीर जिन नर जानिया, कर्ता केवल सार ।
सो प्राणी कैसे चलै, झूटे कुल की लार ॥ २३ ॥

॥ इति सांच का अंग ॥ ४८ ॥

१०३७+२३= १०६० साखी ॥



॥ अथ गरीब दासजी की वाणी "रतनसागर,, से ॥

सांचा सतगुरु जो मिलै, हंसा पावै थीर ।
झक झोली योनी मिटै, मुरशिद गहर गँभीर ॥
साचे को तो सांच है, कूडे को है कूड ।
वैल होत कँगाल का, गलमें पहिरे जूड ॥ २ ॥
सांचे को तो प्रणाम है, झूठे के शिर दण्ड ।
ठौर नहीं तिहुं लोक में, भरमत है नौ खण्ड ॥

सांचे का सेवन करो, झूठे को ले लूट ।
सांच शब्द से यों डरे, ज्यों स्याने की मूट ॥ ४ ॥
सांचे को सिजदा करों, झूठा जल के मांहि ।
त्रिगुण अग्नि जलत हैं, झूठे बहि बहि जाहि ॥
सांचे का सुमिरण करो, झूठे देओ जंजाल ।
सांचा साहब आप है, झूठ कपट सब काल ॥
सांचे के चरणे लगूं, झूठे का लेयों शीस ।
सांच सकल में रहेगा, झूठ न बिस्वे बीस ॥ ७ ॥
सांची को सब सौंपदो, भक्ति बन्दगी नाम ।
झूठा कपटी मारिये, हमरे कौने काम ॥ ८ ॥
सांचे को स्वर्ग पुरी, झूठे दोज़ख़ मांहि ।
चंद सूरकी आयु लगि, दोज़ख़ निकसे नाहि ॥
सांचे शंकर रीझही, ब्रह्मा जोडै प्रीति ।
विष्णु करै प्रति पाल हद, सकल सन्त संगीत ॥
साहेब जिन के उर बसे, झूठ कपट नहिं अंग ।
तिनका दर्शन नहान है, कहा परबी फिर गंग ॥

सांचे से सन्मुख रहो, झूठे से क्या नेह।
संख युगन युग परैगी, झूठे के मुख खेह ॥ १२ ॥
झूठा सब सन्सार है, सांचा है सो एक।
पार ब्रह्म सत पुरुष पद, सब बसुधा की टेक ॥
सांचे साईं सन्त जन, झूठा है सब लोक।
मेढक मछली तडफडे, ज्यों ओछे जल जोंक ॥
सांचे सदा मसनद पर, उस चंगे दर्बार।
झूठे को जूती पडे, यम किंकर की मार ॥
झूठे कपटी जीव सब, सांचे सन्त सुजान।
त्रि बाचा छूठे नहीं, झूठौना कर कान ॥
सांचे के संग चालिये, झूठे संग नाहि जाहु।
रावण मिलता है नहीं, बिभीषन की बांहु ॥
बिभीषण लंका दई, रावण कटि हैं मूड।
सांचे साधू भवँर है, झूठी गोबर भूंड ॥१८॥
झूठे कंसा मारिये, फिर चानौरच माल।
रुक्मिणि को ब्याहन गया, शीश कट्यो शिसुपाल ॥

बाल सहस्त्रा बांहु से, मारे छाती तोरि ।
सांचा जन प्रहलाद है, झूठी जल गई होरि ॥
हरिणाकशपु के उदर को, नख से गेरा पार ।
निर्गुण से सर्गुण भये, धरि नरसिंह औतार ॥
द्रौपदी चीर वढाइया, पीताम्बर अट नाल ।
दुहशासन से पच गये, कौरव भाग्या जाल ॥
दुर्योधन की मेदनी, ह्वै गइ खंड बिहंड ।
दौना गिरि भीषम पिता, बचन नज़र शिर दंड ॥
गज ग्राह ऊबारिया, पशु योनि के सन्त ।
दान मेर छाडे नहीं, करण तुडाये दन्त ॥
महा भारत के जंग में, पांच उबारे पंडु ।
युगन २ की सन्तनी, घण्टा ले ऋषि अण्ड ॥
सांचे के संग नित है, झूठा सेती दूर ।
परमेश्वर करुणामय, रहे सकल घट पूर ॥
वालमीक ब्रालेश्वरी, पूर पनचाइन नाद ।
पाण्डव जग अश्वमेध में, एकैं पाया साधु ॥२७॥

भेषों की लशकर फिरे, बाणी चोर कठोर।
सतगुरु धाम न परसहीं, चौरासी के ढोर ॥२८॥
पारंगत परिचे नहीं, बाणी कहे बनाइ।
धरम राय दरगह सरे, झूठा लीतर खाइ ॥
कपटी को भावे नहीं, भक्ति मुक्ति की रीति।
झूठा लंगर फिरत हैं, साधो टोहत सीत ॥३०॥
उरमे नहीं यकीन है, झूठा लगडा लाठ।
सांचे चढे बिमान पर, झूठा मारे काठ ॥ ३१ ॥
सांचे सूरे सन्त हैं, मरदाने जूझार।
लाख दोष व्यापैं नहीं, एक नाव की लार ॥
सत सुकृत औ बन्दगी, जा उर ज्ञान बिवेक।
साधु रूप साईं मिले, पूरण ब्रह्म अलेक ॥
सत सुकृत सन्तोष सर, आधीनी अधिकार।
दया धर्म जिस उर बसे, सो सांई दीदार ॥
आदि अन्त मध्य सत है, रंचक झूठ जहान।
कपटी युग २ कपट है, लख चौरासी खान ॥३५॥

सांचे को शंका नहीं, झूठे भय घर माहिं।
कोट किला क्या चुनत है, झूठा छूटै नाहिं ॥
साईं बिन कित ठौर है, सांईं बिनु कित बास।
सांच मिलेगा सांच में, झूठे जाहि निरास ॥३०॥
सांच सक्ति नर हरि रची, झूठा रचा जहान।
झूठा सब संसार है, साचे साधू जान ॥
सत सुकृत को बन्दगी, सत सुकृत का जाप।
झूठा दोज़ख़ दीजिये, सांचा आपे आप ॥
साहिब सेती दोसती, सन्तो सेती प्यार।
तिनको शंका है नहीं, धर्मराय दर्बार ॥ ४० ॥
इति साचका अंग गरीब दास साहेब के रतन सागर से ॥



सांचे के मनही में राम। सांचा करै न छल के काम॥
सांचा होकर सुमिरण करै। आप तरे औरन लै तरै ॥
सत्यबादी की पति है सांच। ताको लगै न दिवकी आंच
सांचे चोर चुराया घोडा। परमेश्वर ताका रंग मोडा॥

और चोर चोरी सूं गया। सांच प्रताप अचंभा भया ॥
औरो सांच प्रताप अनंता।सबही जानै साधू सन्ता ॥
लाख बातका एकहि जोड।सांच पुरुष सबन शिर मोर
आवै सांच परम सुख पावे। चरण दास शुकदेव सुनावे
सांचे की पदवी बडी, दुष्ट साधु के माहि।
दोनों अस्तुतिही करै, निन्दक कोई नाहि ॥

चरणदास कृत भक्ति सागर से ॥



॥ अथ बिचार बिवेक का अंग ॥ ४९ ॥

राम राम सब कोइ कहे, कहबे मांहि बिवेक।
एक अनेके मिलरहा, एक समाना एक ॥ १ ॥
राम राम सब कोइ कहे, कहबे माहि बिचार।
वही राम सती कहै, वाहि को कहै कहार * ॥ २ ॥
आग कहे दाझे नहीं, पाव न दीजे माहि।

*कहार लोग जब पालकी लेकर चलते हैं तौ वे अपने प्रत्यक चाल पर 'राम राम राम राम,, ऐसा कहते चलते हैं और यह उनका संकेतिक शब्द है ॥

जौंपै भेद न जानिया, राम कहा तो काहि ॥
कबीर सोच बिचारिये, दूजा कोई नाहि।
आपा पर जानिया, उलटि समाना ताहि ॥ ४ ॥
सारी साखी शिर खँडे, जो रे निरुबारी जाय।
मन प्रतीति न ऊपजे, रात दिवस मिलि गाय॥५॥
एक शब्द में सबही किया, सबही अर्थ बिचार।
भजिय निर्गुण राम को, तजिये बिषय त्रिकार ॥
पाहन केरी पूतरी, राख्या पवन संचार।
नाना बाणी बोलिया, ज्योति धरी कर्तार ॥
नौमन सूत अरुझिया, कबीर घर घर बारि।
जिन सुलझाया मनआपना, तिन जानी भक्तिमुरारि
राम कहो मन बश करो, येही बडा अरत्थ।
काहे को पढि पचि मरो, कोटिक ज्ञान गरत्थ ॥
ज्यों आवे त्योंहि कहै, जानै नहीं बिचार।
हते पराई आत्मा, जीभ बांधि तलवार ॥ १० ॥
जो कछु करै बिचार के, पाप पुण्य ते न्यार।

कहै कबीर यक जानिके, जाय पुरुष दरबार ॥११॥
बोली हमारी पलटि गई, याहि तन येही देश।
खारी ते मीठी भई, सतगुरु के उपदेश॥
बोली हमरी पूर्ब की, हमै लखै न कोय।
मेरी बोली जो लखै, धुर पूरब का होय॥
कबीर हम सबकी कही, हमारी कोइ न जान।
पूरव की बाता कहे, पश्चिम जाय समान॥
अपनी अपनी सब कहै, हमारी कहै न कोय।
हम अपनी आपै कहैं, होनी होय सो होय॥ १५॥
अंतर्यामी तो जब भया, जब घट एक बिचार।
अन्तर्गति की जानिके, हंस उतारै पार॥
आजा का घर अजर है, बेटा के शिर भार।
तीनि लोक नाती ठगे, पण्डित करो बिचार॥
रंगहि ते रंग ऊपजे, सब रंग देखो येक।
कवन रंग है जीव का, ताका करो बिबेक॥१८॥
ज्ञानी का मैं गुरु हूं, अज्ञानी का दास।

जहां देखू ठिगाठिगी, दांते पकडूं घास ॥ १६ ॥
गुरु पशु नर पशु बेद पशु, त्रिया पशु संसार ।
कहैं कबीर विवेक बिनु, कबहु न उतरे पार ॥२०॥
गुरु पशु नर पशु बेद पशु, त्रिया पशु संसार ।
कहै कबीर सो पशु नहीं, जाके बिमल बिचार ॥
आचारी सब जग मिला, बिचारी मिला न कोय।
कबीर कोटि आचारि वारिये, एक बिचारि जो होय

※ ॥ इति बिचार का अंग ॥४९॥ ※

१०६०+२२=१०८२ साखी ॥



यहिजो आहि बिचार को अंगा।सोसुनि लेहुयथार्थप्रसंगा
सांच झूठ जो है संसारा।सांच आत्मा झूठ पसारा॥
साँचाकिया झूठमें बासा।कर्म अकर्मतजैझूठकीआसा
जीव अजीवकोकरै बिचारा।खानपान उत्तमब्यवहारा
अस्ति नास्तिका निर्णय करै। पक्का सौदाहृदया धरै॥
॥ सार शब्द निर्णय से ॥

गरीबदास साहेब की साखी ॥

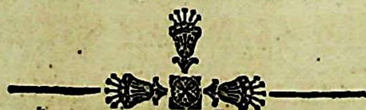
ज्ञान बिचार न ऊपजे, क्या मुख बोलै राम ।
शंख बजावे बावई, रतिन त्रिगुण नाम ॥ १ ॥
ज्ञान बिचार बिवेक बिन, क्यों दम तोरै श्वास ।
क्या होत नर नाम से, जो दिल ना बिश्वास ॥
ज्ञान बिचार बिवेक बिन, क्यों भूंकत है श्वान ।
दशयोजन जल में रहे, भीजत नहीं पषान ॥
ज्ञान बिचार बिवेक बिन, क्यों रेंकत खर गिद्ध ।
कहा होत हरि नामसे, जो मन नाही सिद्ध ॥
समझ बिचारे बोलना, समझ बिचारे चाल ।
समझ बिचारे जागना, समझ बिचारे ख्याल ॥
करै बिचार समझकर, खोज बूझ का खेल ।
बिना मथे निकसे नहीं, है तिल अन्दर तेल ॥
जैसे तिलमें तेल है, यों काया मध्यराम ।
कोल्हू में डारे बिना, तत नहीं सहकाम ॥ ७ ॥
बिचार नाम है समझ का, समझन प्रीति परख ।

अकिल मन्द एकै घना, बिना अकिल क्या लख ॥
पारख करे सो पीर है, बोले समझ बिचार।
नर स्वरूप नर हरि धरया, अरश कला करतार ॥
बिना बिचारे क्या लहे, कस्तूरी भटकंत।
बिनु बूझे नाहि पाइये, गाम डगर मगु पन्थ ॥ १० ॥
ज्ञान सफा के चौक में, जहां बिचार बिबेक।
कुटिलाई जिव बहुत है, निर्मल अंगा एक ॥
बिना बिचारे भरम है, सुरपति सरीखा होय।
गौतम ऋषी गुरुवाबडे, जाकी पत्नी जोय ॥
बिना बिचारे बिचारता, बैरागी शुकदेइ।
सप्त पुरीमें गमन करी, ढूढे जनक बिदेइ ॥
गोरख नाथ सुनाथ है, यंत्र मंत्र के योग।
सतगुरु मिले कबीर से, काटै दीरघ रोग ॥
गंदरपसेन गदहा भया, पूत्र पिता के श्राप।
बिना बिचारे पैठना, सूने उरबसि लाप ॥ १५ ॥
दुर्वासा का तप किया, चौरासी सहस्र प्रसान।

इन्द्र लोक बंधे गये, भवर कुंजौ की खान ॥१६॥
यादब गये बिचार बिनु, भरमैं छप्पन क्रोड ।
दुर्बासासे छल किया, लागी मोटी खोड ॥
इजै विजय थे पौरिया, यिष्णु पौल दरबान ।
बिन बिचार राक्षस भये, बडे कलंक है मान ॥
रावण शिव के तप किया, दीने शीश चढाइ ।
दशमस्तक बीसों भुजा, जो दीने सो पाइ ॥
लंक राज रावण दिया, खोस्या बिना विचार ।
पलक बीच परलय भये, लंका के सरदार ॥
सीता सतवंती सही, रामचन्द्र की नारि ।
रावण दाने छल लई, बिनही ज्ञान बिचार ॥
तीन बचन समझी नहीं, मेटराम की कार ।
समुन्द्र सेतु बन्ध बांध करि, हनुवन्त लंक संघार ॥
पाराशर सेवन करे, कुटिल कला घट मांहि ।
पुत्री सो संजम किया, ज्ञान बिचारा नाहि ॥ २३ ॥
उद्दालक के नासिकेतु, गये फूल बनराइ ।

पिता बचन यद मेटिया, तौ यम नगरी जाइ ॥
नारद मुनि निर्गुण कला, तनवेता तिहुं लोक ।
नर सेती नारी भया, यहि हानी बड धोक ॥ २५ ॥
गरीब पुत्र बहत्र बाक छल, नरते नारी कीन ।
मान दम्भ छूटा नहीं, ततवेता मतिहीन ॥ २६ ॥
भृगु भरम में बहिगये, कीना नहीं बिचार ।
त्रिभुवन नाथ बिश्वम्भर, लात घात करतार ॥
बिन बिचारे तन क्या धरे, कुटिलाई पशु प्रान ।
नाही सुरति शरीर की, ताघट कैसा ज्ञान ॥ २८ ॥
गोपी लुट गइ कृष्ण की, अर्जुन सरीखे संग ।
लख संधानी बान करि, जीते बडे बडे जंग ॥
काब्यो गोपी लूटिया, अर्जुन चले नं बान ।
होगी होइ सो होत है, समझ बूझ यह ज्ञान ॥ ३० ॥

इति बिचार का अंग गरीब दास सा० की बा० रतन सागर से ॥



❀ ॥ अथ बिश्वास का अंग ॥ ५० ॥ ❀

पाडल पिंजर मन भवर, अर्थ अनूपम बास।
राम नाम सींचा अमी, फल लागा बिश्वास ॥ १ ॥
पदगावे लौलीन होय, कटै न संशय पास।
सबै पछोडे थोथरा, एक विना विश्वास ॥
जाके हृदय हरिबसे, सोजन कल्पे काहि।
एकै लहर समुद्रकी, दुख दालिद्र सब जाय ॥
एक गावनहीं में रोवना, यक रोवनही में राग।
यक जंगल ही घर किया, यक घरही में बैराग ॥
गाया तिन पाया नहीं, बिन गाये हरि दूर।
जिन गाया विश्वास गही, तिनके राम हजूर ॥
घट में ज्योति अनूप है, रिज़्क़ मौत जिवसाथ।
कहां सार है मनुष्य का, क़लम धूनी के हाथ ॥
कर्म करीमा लिख रहा, अब कछु लिखा न होय।
सासा घटै न तिल बढै, जो शिर फोरै कोय ॥ ७ ॥
करम करीमा लिख रहा, नरशिर भाग अभागु।

जो कबहूं चित्त चिंतवे, वोही आगे आगु ॥ ८ ॥
चिंता मतकरु अचिंत रहो, देनहार समरत्थ ।
पशु पखेरू जीव जंत, तिनके गांठ न गरत्थ ॥
हरिजन गांठ न बांधहीं, उदर समाना लेहिं ।
आगै पीछे हरि फिरै, जब मांगैं तब देहिं ॥ १० ॥
मागन मरन समान है,बिरला बचे कोय । *
कहै कबीर रघुनाथ सो, मति गवाबै मोय ॥
मान महातम प्रेमरस, गरुवा पड़ा गुण नेहु ।
ये सबही हल्का पडा, जबहि कहा कछु देह ॥१२॥
[1]सबते भली मधूकरी, भांति २ का नाज ॥
दावा काहू का नहीं, बिना विलायत राज ॥

रहिमन वे नर मरिचुके, जो कछु मांगन जाहिं ।
उनते पाहिले वे मुये, जिन मुख निकसक नाहिं ॥
॥ रहिमन शतक ॥

१मधूकरी से यह आशय नहीं है,जैसा आजकलके विचार हीन आल-सियों ने समझ रक्खा है, परन्तु इससे आशय है कि किसी से मांगे बिनाही, गुरु ईश्वर, प्रारब्धी से अपने पुरुषार्थ द्वारा जो प्राप्त

भूख भूख क्या करै, कहां सुनावै लोग।
भांडा गढि मुख राखिया, सोई भरने योग ॥१४॥
रचन हार को चीन्हि करि, खाने को कहां रोय।
दिल मन्दिर में बैठिके, तान पछौडा सोय ॥
चिंतामणि चित्त में बसे, सोई चित्त में आन।
बिन चिंता चिंता करे, यह प्रभू की बान ॥१६॥
कबीर क्या मै चितऊं, मेरा चिंता न होय।
अपनी चिंता हरि करै, मुझे न चिंता कोय ॥
अण्डा पालै काछुवा, बिनु थन लावै पोक ॥(पोषन)
यों करता सबकी करै, पालै तीनों लोक ॥ १८ ॥
चोंह फाटि पगडा भया, जागे जीवा जून।
सब काहूको देत है, चोंच समाना चून ॥ १६ ॥
आगे पीछे हरि खडा, आय सम्हारे भार।

होजावे जिसमें किसी के आधीन न होना पडे॥ इसी के पुष्टता के लिये गुरुसाहब इस साखी से आगे और साखियों में उपदेश करते हैं॥
त्था मागने का परम निषेध करी चुके हैं देखो इसी ग्रन्थ के उपदेश का अंग ११ वा के पृष्ठ ५१ की २९ साखी से ३२ तक ॥

जन को दुखिया क्यों करे, समरथ सिरजन हार॥
राम नाम से दिल मिला, यम सूं पडा दुराय।
मोहि भरोसा इष्ट का, बन्दा नरक न जाय ॥२१॥
जाके मन परतीति है, सदा गुरू है संग।
कोटि काल झक झोलही, कबहुं न होय चित भंग॥
खोज पकड विश्वास गहि, धनी मिलेगा आय।
अजा गज मस्तक चढी, निर्भय कोपल खाय॥
राम नाम कडुवा बडा, बोया बीज अघाय।
सर्व लोक सूखा पडे, कदी न निर्फल जाय॥
आशा का ईंधन करूं, मनसा करूं बिभूति।
योग फेरा सुफल करूं, यो बन आवै सूति ॥२५
विश्वासी होय हरि भजै, लोहा कंचन होय।
राम भजे अनुराग से, हानि हर्ष दुख खोय॥
डोरी लागी डर मिटा, नाद रहा गिरणाय।
सुरति सोहागिन ह्वै रही, पर घर प्रीति न जाय
डोरी लागी भय गया, मन पाया बिश्राम।

चिमटा रामिता राम से, याहि के बल आराम ॥
सौदा कीजिय राम से, भरिय गुणही लाय।
जो कबहूं टांडो लुटै, पूंजी बहल न जाय ॥ २६ ॥

❀ ॥ इति विश्वास का अंग ॥ ५० ॥ ❀

१०८२+२६=११११साखी

❀ ॥ अथ सामरथाई का अंग ॥ ५१ ॥ ❀

ना कछु किया ना करिसंका, ना करने योगशरीर।
जो कछु किया सो हरि किया, भया कबीर कबीर॥
ना कछु किया ना करि सका, ना कछु करने योग।
मैं मेरी जो थापि करि, दूजी थापै लोग ॥ २ ॥
जो कछु किया सो तुम किया, मैं कछु किया नाहिं
कहो कहीं जो मै किया, तुमहो थे मुझ माहि ॥३॥
मेरा मुझ मे कछु नहीं, जो कछु है सो तुझ।
तेरा तुझको सौंपता, क्या लागत है मुझ॥
किये कछु नाहिं होत है, अन कियेही होइ।
जो कुछ किया होत है, तो करता और न कोइ॥

जिसे न कोई तिसे तूं. तू तिसे सब होय।
दरगाह तेरी साइयां, मोटि न सक्के कोय ॥९॥
एक खडा ही ना लहे, एक खडा बिललाय।
समरत्थ मेरा सांइयां, सूता देइ जगाय ॥
अवगुण हारा गुण नहीं, मन का बडा कठोर।
ऐसा समरत्थ साइयां, ताहि लगावै खोर ॥
जो तुम समरत्थ साइयां, दृढ करि पकडो बांहि
धुरकी ले पहुंचावहू, मत छाडो मध्य माहिं ॥
इत कुआं उत बावडी, इत उत थाह अथाहि।
दोऊ दिशा फन फन करे, समरत्थ पार लघाहि॥१
समरत्थ धोरी कन्ध दे, के रत्थ दे पहुंचाय।
मारग में मति छाडिहो, बाना बिरद लजाय॥
साहेब ते सब होत है, बंदा से कछु नाहिं।
राई से पर्बत करे, राई पर्बत मांहि ॥ १२ ॥
बहन बहता थल करे, थल करि बहन बहोय।
सांई हाथ बडाइया, जस भावे तस होय ॥ १३

साँई मेरा बाणिया, सहज करे ब्यापार।
बिन डांडी बिन पालने, तौले सब संसार ॥१४॥
धरती सब कागद करूं, लेखन सब बनराय।
सात समुद्र द्वाइत करूं, हरि गुण लिखा न जाय ॥
अबरण को क्या बरणिये, मोपर बरणि न जाय।
अबरण बरण ते बाहिरा, करि करि थके उपाय ॥
मुझमें इतनी शक्ति कहां, गाऊं गला पसारि।
बन्दे को इतनी घणी, पडा रहे दरबार ॥ १७ ॥
धन्य धन्य साहेब तूबडा, तेरी अनूपम रीति।
सकल भूप शिर साइयां, होय कर रहा अतीति ॥
साँई तुझ से बाहेरा, कौडी नाहि बिकाय।
जाके शिरपर तूं धनी, लाखों मोल कराय ॥ १९ ॥

❀ ॥ इति सामरथाई का अंग ॥ ५१ ॥ ❀

❀ ॥ निर्भयता का अंग ॥ ५२ ॥ ❀

कबीर मैं तो तब डरूं, जो मुझही में होय।
मीच बुढापा आपदा, सब काहू में जोय ॥ १ ॥

देह धरे का दण्ड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञानसे, मूरख भुगते रोय ॥ २॥
धूत दुखी अबधूत दुखी, दुखी रंक बिपरीत।
कहै कबीर सब जग दुखी, सुखी संत मन जीत॥
झल दहिने झल बायें, झलही में ब्यवहार।
आगे पीछे झल बलै, राखे सिरजन हार॥
मेवासा सोई किया, दुर्जन काढ़्या दूर।
राज पियारे राम का, शहर बसै भरिपूर ॥ ५॥
बारूं हरि के नाम पर, कीया राई लौन।
जिसे चलावे पन्थ तू, तिसे भुलावे कौन ॥ ६॥
करनी बपुडी क्या करे, राम न होय सहाय।
जेहि जेहि डाली पग धरे, सोइ सोइ नव नव जाय॥

❀॥ इति निर्भयता का अंग ॥ ५२॥❀

१११६+१९+७=११३७साखी ॥

❀॥ अथ काल का अंग ॥५३॥ ❀

झूठा सुख को सुख कही, मानत है मन मोद।

जगत चबेणा काल का, कछु मुखमें कछु गोद ॥१॥
टक टक गया जोवता, पलपल गया बिहाय ।
जीव जंजाले पडि रह्या, यमहि दमाम बजाय ॥
लूट सकै तो लूटले, राम नाम भंडार ।
काल कंठते पकडि है, रोके दशो द्वार ॥ ३ ॥
मै एकला ये द्वे जना, साथी नाही काय ।
जो यम आगे ऊबरूं, तौ जरा पहुचे आय ॥
जरा कुती यौबन शसा, काल अहेरी लार ।
अबकी च्हणमें पकडिहै, गरबे कहां गँवार ॥
काल हमारे संग है, कैसे जीवन आस ।
दिन दश राम संभारले, जब लग पिंजर श्वास ॥
आठपहर योंही गया, माया मोह जंजाल ।
राम नाम हृदय नहीं, जीति लिया यमकाल ॥
बारी बारी आपने, चले पियारे मित्त ।
तेरी बारी जीयरा, नियरे आवे नित्त ॥ ८ ॥
पंथी ऊभा पंथसर, बगुचा बांधे पूठ ।

मरण मूँह आगे खडा, जीवन की सब झूठ ॥६॥
माली आवत देखिके, कलियां करे पुकारि
फूली फूली चुन लिये, कालि हमारी बारि ॥ १० ॥
बढई आवत देखिकर, तरुवर डोलन लागि।
हमे पडवे को कछु नही, पखेरू के घर भांगि ॥
फागुन आवत देखिकर, बन रोता मन मांय।
ऊचे डाली पात है, दिन दिन पीला थाय ॥ १२ ॥

❁ ॥ इति काल का अंग ॥५३॥ ❁

❁ ॥ काल चेतावाणी का अंग ॥५४॥ ❁

निधडक बैठा राम बिन, चेति न करो पुकार।
यह तन जलका बुदबुदा, बिनशत नाही बार ॥१॥
पानी कासा बुदबुदा, ऐसी हमरी गात।
देखतही छिपि जायगा, ज्यों तारा प्रभात ॥२॥
पांच पखेरू घर किया, राखै पोख लगाय।
एकज आया पारथी, ले गया सबै उडाय ॥३॥
मन्दिर माही झबकती, दीवा कीसी ज्योति।

हंस बटाऊ चलगया, काढो घरका छोति ॥ ४ ॥
परदे रहती पद्मिनी, करती कुलकी कान।
छडी पहुंची राम की, ढेर भई मैदान ॥ ५ ॥
कहां चुनावे मेढ़िया, लांबी भीत उसार।
घरतो साढे तीन हाथ, घणो तो पौने चार ॥
मच्छ होयना बाचिहो, धीमर तेरो काल।
जेहि जेहि डाबर तुम फिरो, तहं तहं मेलै जाल ॥
मछली दह छाडै नहीं, धीमर मेरा काल।
जेहि २ डाबर घर करूं, तेहि २ रालै जाल ॥
पानी मीली माछली, क्यों तू पकडी तीर।
काडिया खटकी काल की, आई पहुंचे कीर ॥
हे मत हीनी माछली, राख न सकी शरीर।
सो सरवर सेया नहीं, जाल काल नाहिं कीर ॥१०॥
हे मत हीनी माछली, तै झीमर मति कीय।
करि समुद्र से रूसना, छीलर में चल दीय ॥११॥
हे मत हीनी माछली, छीलर माडी आल।

डाबरिया छूटे नहीं, सकै तो राम संभाल ॥ १२ ॥
आखंडिया रखालिया, चेजा करे पताल ।
मैं तोहि पूछों माछली, तू क्यों बीधी जाल ॥
आंखंडिया रखालिया, चेजा करूं पताल ।
पासा पडा करम का, यों हम बीधी जाल ॥
सूखन लागी केवडा, तूटन लागी मार ।
पानी की कल जानता, सो गया सीचन हार ॥
धवन धवती रह गई, बूझि गया अंगार ।
अहरन खटका मिट गया, ऊठी चला लुहार ॥
काहे हरिणी दूबरी, चरै हरियरे ताल ।
लक्ष अहेरी एक मृगा, केतिक टारूं भाल ॥ १७ ॥
राम कहा तिन कहि लिया, जरा पहुंची आय ।
मन्दिर लागा द्वार सों, अब कछु कढा न जाय ॥
बेरिया बीती बल घटा, केश पलट भया और ।
बिगडा काज सुधारि ले, कर छूटा नहिं ठौर ॥
कबीर हरि सों हेतु करि, कुंडी चेतन लाय ।

बांधा द्वार खटिक के, तेहि पशु केतिक आय ॥
कांची काया मन अथिर, थिर थिर काम करन्त ।
ज्यों २ नर निधरक फिरै, त्यों त्यों काल हसंत ॥
कबीर सब सुख राम है, और सुखों की राशि ।
सुर नर मुनि असुर जे, सबे काल के पाशि ॥
टाला टूली दिन गया, ब्याज बढंता जाय ।
ना हरि भज्यो न खत कट्यो, कालो पहुंचा आय॥
ज्यों कोली बेझा बिनै, बिनता आवे ओड ।
ऐसा लेखा मीच का, दौड सके तो दौड ॥ २४ ॥
कबीर पगडा दूरि है, बीच खडी है रात ।
क्या जानू क्या होयगा, ऊगेते प्रभात ॥ २५ ॥
हम जाने थे खायंगे,बहुत जमीं बहु माल ।
जोथा जहांही रहगया, पकडि लेगया काल ॥
चहुंदिशि योद्धा खडे, हाथ लिये सब भाल ।
रहि गये सबहीं देखते, पकड़ि लेगया काल ॥
दव की डाही लाकडी वह भी करै पुकार ।

अबजो जाऊं लुहार घर, डाहे दूजी बार ॥ २८ ॥
मेरा बीर लोहारिया, तू मति जालै मोहि ।
एक दिन ऐसा होयगा, हूं जालूंगी तोहि ।
संशय काल शरीर में, विषम काल है दूर ॥
जाको कोई ना लखै जारि करै सब धूरि ॥ ३० ॥
आस पास चौकी रहैं, सबै बजावे गाल ।
मांझ महल से ले चला, ऐसा बरबस काल ॥
भाई बीर बटाउआ, भरि २ नैनन रोय ।
जिसका था सो लेलिया, दीना था दिन दोय ॥
निश्चय काल ग्रासही, बहुत कहां समझाय ।
कहै कबीर मैं क्या कहूं, देखत ना पतियाय ॥३३॥

❀ ॥ इति काल चितावनी का अंग ॥ ५४ ॥ ❀

११३७+१२+३३=११८२साखी

❀ ॥ अथ सजीवनका अंग ॥५५॥ ❀

जरा मीच व्यापे नहीं, मुवा न सुनिया कोय ।
चल कबीर उस देश में, बैद रमैया होय ॥ १ ॥

भवसागर ते यों रहे, ज्यों जल तेल निराल।
मन तहां ले राखिये, जहां मीच न भंवरा काल ॥
कबीर योगी बन बसी, खनि खाया कंदमूल।
ना जानूं केहि जडी से, अमर भया अस्थूल ॥
कबीर तू हरिपै चलो, माया मोह से तोडि।
गगन मण्डल आसन करो, काल रहा शिर फोडि ॥
कबीर मन तीखा किया, लाया बिरह खुरसान।
चित चरणों से चौंठिया, तब नाहिं कालका बान ॥
काची कारी मत करै, दिन दिन बधै बिरोध।
राम कबीरा रुचि भया, सोई औषध सोध ॥ ६ ॥

॥ इति सजीवन का अंग ॥ ५५ ॥

❁ ॥ अथ पछतावा का अंग ॥ ५६ ॥ ❁

आछे दिन पाछे गये, पिया सें किया न हेत।
अब पछताये होत का, चिडिया चुग गई खेत ॥१॥
मरती बेरिया पुण्य करै, जीवत बहुत कठोर।
कहैं कबीर क्यों पाइये काढे खांडे चोर ॥ २ ॥

कबीर बैद बुलाइया, पकड दिखाइ बांहि ।
बैद्यन बेदन जानही, कफ कलेजा माहिं ॥ ३ ॥

॥ इति पछतावाका अंग ॥५६॥

॥ पछतावा निवारण का अंग ॥ ५७ ॥

राम नाम की औषधी, कोटि कटै बिकार ।
विषय छाडि बिरक्त रहे, काया कंचन सार ॥ १ ॥
राम रमत अस्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन ।
सुरति शब्द एकै भया, जल होय गया मीन ॥
मनुवा भूयौ देशांतरी, बोलै शब्द रसाल ।
बात देशांतर की कहै, जहां नहीं यम काल ॥
ऐसी तीखी सुरति है, फोडि गई ब्रह्माण्ड ।
पीव निराला देखिया, सप्त द्वीप नव खण्ड ॥
सूली ऊपर घर करूं, विष का करूं अहार ।
यम बिचारा क्या करे, आठो पहर हुशियार ॥
काल के माथे पाव दे, सतगुरु के उपदेश ।
साहेब अंक पसारिया, ले चला अपने देश ॥६॥

राम मरै तो हम मरै, नातर मरै बलाय ।
अविनाशी का चींगटा, मरे न मारा जाय ॥ ७ ॥

❁ पद ❁

हम न मरैं मरिहैं संसारा। हमको मिला जियावनहारा
अब न मरौं मोर मनमाना। सोईमुवा जिनरामनजाना
साकटमरै संतजन जीवै। भरि २ राम रसायन पीवै
हरि मरिहैं तो हमहूं मरिहैं। हरिनमरै हम काहेकोमरिहैं
कहकबीरमनमनहिंमिलावा। अमरभयेसुखसागरपावा

यम जोरा कुछ है नहीं, सबै राम का रूप ।
संशय खाये पृथ्वी, रहे कबीरा चूप ॥ ८ ॥
सब जग डरपे काल से, ब्रह्मा विष्णु महेश ।
सुर नर मुनि जन लोक त्रय, स्वर्ग साथ लगि शेश ॥
चन्द्र सूर धरणि पवन लगि, खण्ड ब्रह्मण्ड प्रवेश ।
डरपे काल कबीर से, जय जय पुरुष आदेश ॥ १० ॥

॥ इति पछतावा निवारण का अंग ॥ ५८ ॥

११८२+६+३+१०=१२०१ साखी

॥ अथ शूरातन के अंग प्रारम्भः ॥

॥ शूरा का अंग ॥ ५६ ॥

सूरा सोइ सराहिये, लडे धनी के हेतु ।
पुर्जा पुर्जा होय रहे, तबहुं न छाडै खेत ॥ १ ॥
खेत न छाडै शूरमा, जूझै दोउ दलमांहि ।
आशा जीवन मरणकी, मनमें आनै नाहि ॥
गगन दमामा बाजिया, कलहलिया के कान ।
शूरा धरे बधावना, कायर तजै प्राण ॥
गगन दमामे बाजिया, पडी निशाने चोट ।
कायर भागे कछु नहीं, सूरा भाजे खोट ॥
शूरासार संभालिया, पहिरा सहज सँयोग ।
ज्ञान गयन्दा चढि करि, खेत पडन का योग ॥
शीतळता संजोयले, शूर चढै संग्राम ।
अबकी भाजन पडत है, शिर साहेब के काम ॥
धडसे शीश उतारि करि, डाल देइ ज्यों ढेल ।
काहु सुभट ना शोभई, घर जाने का खेल ॥७॥

शूरा के तो शिर नहीं, दाता के धन नाहि ।
पतिबरता के तन नहीं, जीव बसे पिव माहि ॥
साधू सती औ शूरमा, इनकी बात अगाध ।
आशा छाड़ै देह की, तनमें अधिकि साध ॥
साधु सती और शूरमा, इन सम कोइ नाहि ।
अगम पंथको पग धरे, डिगै तो ठाहर नाहि ॥१०॥

॥ इति शूरा का अंग ॥ ५९ ॥

❀ ॥ शूरा उत्साह का अंग ॥ ६० ॥ ❀

शूरा नाम धराय के, अब क्या डरपै सीर ।
मँडि रहना मैदान में, सनमुख सहना तीर ॥ १ ॥
कायर बहुत पमावही, बडक न बोले शूर ।
सारी खलक यों जानिये, किसके मोहड़े नूर ॥
शूरा थोडाही भला, सतकरि रोपै पग ।
घणा मिला किस काम का, आवन कासा बग ॥
लडने को सबही चले, आयुध बांधि अनेक ।
सांई अपने कारणे, जूझेगा कोइ एक ॥ ४ ॥

जूझैंगे तब कहैंगे, अब कछु कहा न जाय।
भीड पडे मन मसखरा, लडै किधू भगजाया ॥
शूरा के मैदान में, कायर का क्या काम।
शूरा से शूरा मिलै, तब पूरा संग्राम ॥ ६ ॥
साधु सती औ शूरमा, ज्ञानी अरु गज दन्त।
एता निकसि न बाहुरे, जो युग जाय अनन्त ॥
शूर न सेरी ताकवै, नेजा घाले घाव।
सब दल पाछा मोडि करि, मांडी सेती चाव॥
पांच आश मनमें लिया, तब रण धसिया शूर।
दल मोडा शिर ऊबरा, भोजरा राम हजूर ॥
ये तीनों भागा बुरा, साहेब जाके सूंह ।
साध सती औ शूरमा, दई न मोडै मूंह ॥ १० ॥
रण धसा जो ऊबरा, आगा गृह निवास।
घर बधावा बाजिया, और दूजे की आस ॥
सार बहे लोहा बहे, टूटै झडै ज़ंजीर।
यम ऊपर सो क्या करे, चढि गये दास कबीर॥

टूटे ब्रत अकाश से, कौन सके झक झेल ।
साधु सती औ शूरमा, अणि ऊपर का खेल ॥ १३ ॥
शूरा सन्मुख आवता, कोइ न बांधे धीर ।
पर दल मोढे रण अटल, ऐसा दास कबीर ॥
शीश पखै साईं नखै, भट बांका अस्वार ।
कमध कबीर कैडा किया, केता किया शृंगार॥१५॥

॥ इति शूरा उत्साह का अंग ॥ ६० ॥

❁ ॥ प्रेम भक्ति शूरातन का अंग ॥ ❁

भक्ति दुहेली रामकी, जैसी खांडा धार ।
जो डोलै तो कटि पडै, निश्चल उतरै पार ॥ १ ॥
भक्ति दुहेली रामकी, जैसी अग्नि की झार ।
झाक पडा सो ऊबरा, दाझे कोतक हार ॥
कबीर प्रकट राम कहे, छाने राम न ध्याय ।
फूसक जोडा दूर करू, बहुरि न लागै लाय ॥
आप स्वार्थी मेदनी, भक्ति स्वार्थी दास ।
कबीर राम स्वार्थी, छाडी तनकी आस ॥

सांई सेति न पाइये, बाते मिले न कोय ।
कबीर सौदा राम से, शिर बिन कबहुं न हौय ॥
योग ते जो हरि भला, एक घडी का बान ।
योगी जलै न जल बुझै, दहकता रहै मसान ॥
ज्यों ज्यों हरि गुण साभलूं, त्यों त्यों लागे तीर।
सांटी साटे जड पड़ी, फलका रहा शरीर ॥ ७ ॥
ज्यों २ हरिगुण सांभले, त्यों त्यों लागे तीर ।
लागे से भागे नहीं, सोई सँत सुधीर ॥ ८ ॥
ऊंचा तरुवर गगनफल, पंथी मूआ झूर ।
अनेक सयाना पचिगया, फल निर्मल पण दूर ॥
दूर भया तो कगा भया, फले हरि मेला सोय।
जब लगि शिर सौंपे नहीं, कारज सिद्ध न होय ॥
शीश उतारा शूरमे, छाडी तन की आस ।
आगे से हरि हराषिया, आवत देखा दास ॥ ११ ॥
जेता तारा रैन का, एता बैरी मुझ ।
धड शूली शिर कगुरे, तऊ न बिसारूं तुझ ॥

कबीर हीरा बणीजिये, महँले मोल अपार ।
हाड गली माटी मिलै, शिर सांटे ब्यवहार ॥
चौपड मांडी चौहटे, अरध उरध बाजार ।
कबीर खेले राम से, कबहुं न आवै हार ॥
जो हारूं तो हरि सेवा, जो जीतूं तो दाव ।
पार ब्रह्म से खेलता, जो शिर जाय तो जाव ॥१५॥
खेल जो मंडा खेलाड़ से, आनन्द मंडा अघाय ।
अब पासा कोई पड़ै, प्रेम बँधा युग जाय ॥
खोजी को डर बहुत है, पल पल पड़ै बियोग ।
परण राखत जोतन गिरै, सोतन साहेब योग ॥
घायल तो घूमा फिरै, राखे रहे न ओट ।
यतन किये नहिं बाहुरे, लगी मरम की चोट ॥
घायल की मति और है, जूझे का मति और ।
लागा बाण जों प्रेम का, रहा जुहाला ठौर ॥१९॥
पांच अग्नि सहनी सुगम है, सुगम खांडे की धार ।
नेह निभावन एक रस, महा कठिन ब्यवहार ॥

नेह निभावतेही बने, शोचे बने न आन ।
तन दे मन दे सो सधे, प्रेम न दीजे जान ॥२१॥
भाव भाल का सुरति शर, धरि धीरज करतान ।
मन की मूठ जहां मंडी, चोट तहां ही जान ॥
मेरे संशय कछु नहीं, लागा हरि से हेत ।
काम क्रोध से जूझना, चौड़े मांडा खेत ॥ २३

❀ ॥ ज्ञान शूरातन का अंग ६१ ॥ ❀

कायर हुआ न छूटिहो, कछु शूरातन समाय ।
भरम भलका दूर करि, सुमिरण शील मंजाय ॥
कोने पडा न छूटिहो, सुनुरे जीव अबूझ ।
कबिरा मरु चौगान में, कर इन्द्रिन सो जूझ ॥
कबीर घोडे प्रेम के, चैतन चढा अस्वार ।
ज्ञान खड्ग ले काल शिर, भली बजाई सार ॥
चित चैतन ताजी करो, लवको करो लगाम ।
शब्द गरु का ताजना, पहुंचे संत सुठाम ॥ ४ ॥

कबीर तुरी पलानिये, चाबुक लीजे हात।
दिवस थकी साईं मिलै, पीछे पडसी रात ॥ ५ ॥
हर घोडा ब्रह्मा कड़ी, बिष्णु पीठ पलान।
चन्द्र सूर दोय पागड़ा, चढसी संत सुजान ॥
तीर तुपक से जो लड़े, सो तो शूरा नाहि।
ज़ूझे सब तन छांड़ि के, डारे सबके माहि ॥
शूरा के मैदान में, कायर फंदा आय।
ना भाजे ना लड़ि सके, मनही मन पछताय ॥
बांका गढ बांका मता, बांकी गढकी पोल।
छका कबीरा निकला, यम शिर पाड़ी रोल ॥
बांकी तेग कबीर की, अणी पड़ा दोय टूक।
मारा मार महाबली, ऐसी मूठ अचूक ॥ १० ॥
कबीर तोडे मानगढ, पकड़े पांचूं श्वान।
ज्ञान कुहाड़ा कर्मबन, काटि किया मैदान ॥
कबीर तोड़ा मानगढ, मारे पांच ग़नीम।
शीश नवायो धनीको, साजी बड़ी महीम ॥

शिर राखे शिर जात है, शिर काटे शिर होय।
जैसे बाती दीप की, कटा उजाला होय ॥
कबीर पांचो मारिये, जा मारे सुख होय।
भला भली सब कोइ कहे, बुरा न कहेसी कोय ॥
ऐसी मार कबीर की, मुवा न दीसै कोय।
कहै कबीर सोइ ऊबरे, धड़पर शीश न होय ॥
मारा है मरि जायगा, शब्द सुरंगे बान।
मेरा मारा फिर जिवै, हाथ न गहौं कमान ॥
ज्ञान कमान लव गुणा, तन तरकश मन तीर।
भलका बहै तत्व सारका, मारी हदफ कबीर ॥
करड़ी कमान कबीर की, धरी रहै चौगान।
केते योद्धे पचिगये, खींचे संत सुजान ॥ १८ ॥

❀ ॥ इति ज्ञान शूरातन का अंग ॥ ६१ ॥ ❀

१२०१+१०+१५+२३+१८=१२६७साखी ॥



॥ अथ सती का अंग ॥ ६२ ॥

मरने का भय छाडि के, हाथ सिंधूरा लीन ।
अब तो ऐसी होय पडी, मनुवा निश्चल कीन ॥
सती पुकारे सत चढी, सुनुरे मीत मसान ।
लोग बटाऊ चलि गये, हम तुम रहे निदान ॥
सती बिचारी सत किया, काठा सेज़ बिछाय ।
लेइ सूती पिव आपना, चहुं दिशि आग लगाय ॥
सती शूरातन संभाल के, तन मन किया धान ।
दिया मोहेला पीव को, भरहट करै बखान ॥
ते सतियां कूसती है, जलै मुर्दा की लार ।
सतियां सोइ सराहिये, जलै संभार संभार ॥५॥

॥ इति सती का अंग ॥ ६२ ॥

१२६७+५=१२७२साखी

॥ अथ जीवन मृतक का अंग ॥ ६३ ॥

जीवन मृतक होय रहो, तेजि खलक की आस ।
आगे पीछे हरि फिरै, मत दुख पावै दास ॥ १ ॥

मोती उपजै सीप में, सीप समुन्दर माहिं।
मरजीवा कोइ काढहिं, दूजा को गम नाहिं ॥
हरि दरिया सुभर भरा, जामे मुक्ता लाल।
मरजीवा कोइ नीसरे, पहिरि क्षमा की खाल ॥
हरि हीरा क्यों पाइये, जबै जीव की आस।
हरि दरिया से काढई, कोइ मरजीवा दास ॥४॥
मैं मरजीवा समुद्र का, पैठा सप्त पताल।
लाज कान को मेटि के, गये निकासन लाल॥ ५॥
मैं मरजीवा राम का, डुबकी मारी एक।
मूठी भरी ज्ञान की, तामे बस्तु अनेक ॥ ६ ॥
ऊंचा तरुवर गगन फल, बिरला पहुंचे जाय।
इस फल को सोई भखै, जीवतही मरजाय ॥
जब लगि आस शरीर की, निर्भय हुओ न जाय।
काया माया मन तजै, चौड़े रहे बजाय ॥ ८ ॥
शून्य सनेही पाइया, तहां मरजीवा मन।
कबीर चुनि चुनि ले गया, भीतर राम रतन ॥९॥

पैड़ाही में पड़ि रहा, दुर्बल मृतक होय।
जेहि गलिया जग लूटिया, सार न बूझै कोय ॥
कबीर मरि २ हट गया, कोइ न बूझै सार।
हरि आदरि आगा लिया, गऊ बछा की लार ॥

॥ इति जीवन मृतक का अंग ॥६३॥

॥ अथ जीवन मृतक परीक्षा का अंग ॥ ६४ ॥

खरी कसौटी राम की, झूठा टिकै न कोय।
राम कसौटी सो टिकै, जीवत मृतक होय ॥ १ ॥
काच कथीर अधीर नर, यतन करत है भंग।
साधू कंचन ताइये, चढै सवाया रंग ॥ २ ॥
कसत कसौटी जो टिकै, तिनको शब्द सुनाइ।
सोई हमारे बंश हैं, कहै कबीर समझाइ ॥
कांच कथीर अधीर नर, तिसे न उपजे प्रेम।
कहै कबीर कसनी सहै, कै हीरा कै हेम ॥ ४ ॥
कबीर नवै सो आप को, पर को नवै न कोय।
घालि तराज़ू तौलिये, नवै सो भारी होय ॥ ५ ॥

आपा मेटै हरि मिलै, हरि में रहा समाय ।
अकथ कहानी प्रेम की, कहै तो को पतियाय ॥
रोडा होय रहे बाट का, तजि पाखण्ड अभिमान ।
लोभ अहंकार तृष्णा तजै, ताहि मिलै भगवान ॥
रोडा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देहि ।
हरि जन ऐसा चाहिये, जैसी झीणी खेहि ॥ ८ ॥
खेह भया तो क्या भया, उडि उडि लागे अंग ।
हरिजन ऐसा चाहिये, ज्यों पानी का रंग ॥ ९ ॥
पानी हुआ तो क्या हुआ, ताता सिहर होय जाय ।
हरिजन ऐसा चाहिये, हरि भजि हरि होइ जाय ॥
मोहि मरने का चाव है, मरूं तो राम दर्बार ।
मति हरि बूडे बातडी, साधु मुये दरबार ॥ ११ ॥
मरता २ जग मुवा, अवसर मुवा न कोय ।
दास कबीरा यों मुवा, बहुरि न मरना होय ॥
जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनन्द ।
कब मरिये कि भेटिये, पूरण परमानन्द ॥ १३ ॥

मरना भला बिदेश का, जहां न अपना कोय ।
मांटी खाय जनावरां, महा महोछव होय ॥
हरि जन मुये क्या रोइये. जो अपने घर जाय।
रोइये साकट बापुरे, जो हाटो हाट बिकाय ॥
मन मनसा ममता मुई, अहं गई सब छूटि ।
गगन मंडल में घर किया, काल रहे शिर कूटि ॥

॥ इति जीवन मृतक परीक्षा का अंग ॥ ६४ ॥

॥ अथ देखा देखी भक्ति का अंग ॥ ६५ ॥

देखा देखी भक्ति को, कबहुं न चढसी रंग ।
बिपत पड़े यों छाडसी, ज्यों कांचली भुजंग।
देखा देखी पकडी, गई छिनक में छूट ।
कोइ बिरला जन्न बाहुरे, सतगुरु स्वामी मूठ ॥
ज्ञान सम्पूरण नां भिदा, हृदया नाहि जुड़ाय ।
देखा देखी भक्ति का, रंग नहीं ठहराय ॥ ३ ॥

❀ ॥ देखा देखी भक्ति परिक्षा का अंग ॥६६॥ ❀

कबीर हरिका भावता, दूरहि ते दर्शंत ।

तन छीना मन उनमना, जगते रूठि फिरंत ॥ १ ॥
फाटे दीदे मैं फिरूं, नजर न आवे कोय।
जाघट मेरा साइयां, सो क्यों छाना होय ॥
अनरता सुख सोवना, रता निन्द न आय।
ज्यों जल ढूंढै माछली, तलफत रैन बिहाय ॥
राम बियोगी बिकलतन, ताहि न चिन्है कोय।
तंबोली का पात ज्यों, दिन दिन पीला होय ॥
जौन भक्त का नित मरण, अन जान्या का राज।
सर औसंर समझै नहीं, पेट भरन से काज ॥ ५ ॥
॥ इति देखा देखी भक्ति परिक्षा का अंग ॥ ६६ ॥
❀ ॥ देखा देखी भक्त उपदेश का अंग ॥ ६७ ॥ ❀
करिये जो कर जानिये, सारी खासी रंग।
लीर लीर लोई हुई, तौहु न छाडै संग ॥ १ ॥
स्वारथ का सब कोइ सगा, जगत सराही कान।
बिन स्वारथ आदर करे, साहेब का पहिचान ॥
यों मन दीजे तासुको, जो संत सेवक होय।

शिर ऊपर आरा सहे, तऊ न दूजा होय ॥ ३ ॥
पाहन टांक न तौलिये, हाड न कीजे बेह ।
माया रता जो मानवी, तासो कैसा नेह ॥ ४ ॥
कबीर तासे प्रीति करो, जो निर्बाहे ओर ।
वनिता बिधिना राचिये, देखत लागे खोर ॥ ५ ॥
॥ ❀ इति देखा देखी भक्ति उपदेश का अंग ॥ ❀
१२७२+११+१६+३+५+५=१३१२साखी ॥६७॥

❀ ॥ अथ असार ग्राही का अंग ॥ ६८ ॥ ❀

कीट स्वर्ग तजि नरक गहे, हरष सदा दिनरात ।
असार ग्राही मानवा, गहे असारही बात ॥ १ ॥
मच्छी मल को गहत है, निर्मल बस्तुहि छांड ।
कहै कबीर असार मता, मांडि रहा मन मांड ॥
आटा तजि कूगस गहे, चलनी देख निहार ।
कबीर सारहि छाडि के, करै असार अहार ॥
रस छाड़ै छोई गहै, कोल्हू प्रत्यक्ष देख ।
सार तजै असार गहै, हृदय नहीं बिवेक ॥४॥

दूध त्यागि रक्त गहै, लगी पयोधर जोंक ।
कहै कबीर असार मति, छिन नहिं राखै फोक ॥
निर्मल छांड़ै मल गहे, जान असारी सोय ।
कहै कबीर असार मति, गये आपन पौ खोय ॥६॥

❀ ॥ इति असार ग्राही का अंग ॥ ६८ ॥ ❀

१३१२+६=१३१८ साखी

❀ ॥ अथ सार ग्राही का अंग ॥६९॥ ❀

साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप स्वभाय ।
सार सार को गहि रहे, थोथा देइ उड़ाय ॥ १ ॥
बाणी बहुत प्रकार की, जाका नाहीं अंत ।
जो कुछ तेरे काम की, सोई कर सिद्धांत ॥२॥
पहिले फट के छांट के, थोथा सब उडिजाय ।
उत्तम भांडे पाइया, फटके ते ठहराय ॥३॥
हंसा पय को काढिले, छीर नीर निरुवार ।
कहैं कबीर यों सार गहे, तब जाइ उतरे पार ॥
चुम्बक काढे सार को, फेर मिलै पल हेत ।

यों साधू काढि सार को, उर अन्तरका लेत ॥५॥
पारा कंचन काढ ले, जोरे मिले पराा आन ।
कहै कबीर यह सार मता, प्रत्यक्ष किया बखान ॥
रक्त छाडि पय को गहै, जोरे गऊ का बच्छ ।
औगुण छाडे गुण गहे, ऐसा साधू लच्छ॥ ७ ॥

॥ इति सारग्राही का अंग ॥ ६९ ॥

१३१८+७=१३२५ साखी ॥

॥ अथ कुसंगति का अंग ॥ ७० ॥

कबीर कुसंगति जनि करूं, वाका नाम न ठाम ।
ते क्यों होसी माधवा, साधु नहीं ते गाम ॥१॥
कुसंगति जानि कीजिये, लोहा जल न तराय ।
कदली सीप भुवंग मणि, एक बुन्द तेहि भाय ॥
उज्वल बुन्द अकाश की, पडि गई भूमि बिकार ।
मूल बिनठा मानवी, बिन संगति भठ चार ॥

स्वाती बुन्द सीपी मुक्ता, कदली भाव कपूर ।
सर्प मुख विष होत है, संगति शोभा सूर ॥

हरिजन सेती रूसना, संसारी से हेतु ।
ते नर कबहुं न नीपजे, ज्यों कालर का खेत ॥
कहै कबीर सो क्यों बने, अन बनता से संग ।
दीपक को भावे नहीं, जल जल मरै पतंग ॥ ५ ॥
मेरी निशानी मीच की, कुसंगतही काल ।
कहै कबीर रे प्राणिया, बाणी ब्रह्म संभाल ॥
जान बूझि साचा तजै, करै झूठ से नेहु ।
ताकी संगति राम जी, सपनेहू मत देहु ॥ ७ ॥
काचा सेती मत मिले, पाका सेती बान ।
काचा सेती मिलतही, होत भक्ति में हान ॥८॥

॥ इति कुसंगत का अंग ॥ ७० ॥

॥ अथ साधू संगति का अंग ॥ ७१ ॥

कबीर संगत साधु की, निर्फल कदी न होय ।
होसी चन्दन बासना, नीब न कहेसीं कोय ॥ १ ॥
कबीर संगति साधु की, कदी न निर्फल ज़ाय ।
जोपै बोवै भूनके, फूले फले अघाय ॥ २ ॥

कबीर संगति साधुकी, नित प्रति कीजे जाय ।
दुर्मति दूर गमावही, देशी सुमति बताय ॥
मथुरा भावे द्वारका, भावे जाओ जगन्नाथ ।
साधु संगति हरि भजन बिन, कछु न आवे हाथ ॥
मेरा संगी दोय जना, एक बैष्णव यक राम ।
वहदाता मुक्ति करे, वह सुमिरावे राम ॥ ५ ॥
कबीर बन बन मैं फिरा, कारण अपने राम ।
राम सरीखा जन मिला, सोइ सारे सब काम ॥
कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाय ।
अंक भरेभर भेटिये, पाप शरीरा जाय ॥ ७ ॥
हरिजन आवत देखिकर, हंसी हमारी देह ।
माथा का ग्रह ऊतरा, नैना बधा सनेह ॥
कबीर चन्दन के ढिगे, बेधा ढाक पलास ।
आप सरीखा कर लिया, जो था उनके पास ॥
कबीर चन्दन के निटके, नीब भी चन्दन होय ।
बूडे बांस बड़ाइया, यों मति बूड़ो कोय ॥ १० ॥

कबीर खाई कोटि की, पानी पीवै न कोय ।
जाय मिलै जब गंग से, सब गंगोदक होय ॥
घडी एक आधी अरू, आधीहू से आध ।
साधां सेती गुष्टि जो, कीजै सोई लाध ॥ १२ ॥
कबीर तासे प्रीति कर, जो भजै हरि नाम ।
राजा राना छत्र पति, राम बिना बेकाम ॥
कबीर संगति साधु की, साहेब आवे याद ।
लेखा मे सोई घडी, बाकी का सब बाद ॥
चन्दन जैसा सन्त है, सर्प जैसा संसार ।
वाके अंग लपटा रहे, भाजे नही बिकार ॥ १५ ॥
भुवंगम बास न भेदई, चन्दन दोष न लाय ।
सब अंग तो बिषसे भरा, अमृत कहां समाय ॥
चन्दन डरपै लसनसूं, मतरे बिगाडें बास ।
सुगुणा डरपै निगुणसूं, यो जगसे डरपे दास ॥
साधु संगति अन्तर पडे, यह मति कबहूं होय ।
कहै कबीर तिहुं लोक में, सुखी न देखा कोय ॥

कबीर संगति साधुकी, हरै और की व्याधि ।
ओछी संगति कूर की, आठो पहर उपाधि ॥ १६ ॥
कबीर कलह कल्पना, सतसंगति से जाय ।
दुख वासे भागा फिरै, सुख में रहे समाय ॥ २० ॥
कबीर संगति साधु की, ज्यों गंधी का पास ।
जो गाधी कछु दे नहीं, आवे बास सुबास ॥२१॥
साधुन की सत संगते, थर हर कांपे देह ।
कबहूं भाव कुभावते, मत मिटि जाय सनेह ॥
राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय ।
जो सुख साधू संग में, सो बैकुण्ठ न होय ॥
संगति भया तो क्या भया, हृदया भया कठोर ।
नौ नेजा पानी चढ़ै, तऊ न भीजै कोर ॥ २४ ॥
साखी शब्द बहुत सुनी, मिटा न मन का दाग ॥
संगति से सुधरा नहीं, ताका बड़ा अभाग ॥२५॥

॥ इति साधू संगति का अंग ॥ ७१ ॥

॥ १३२५+८+२५=१३५८ साखी ॥

॥ अथ दुबिधा का अंग ॥ ७२ ॥

दुबिधा जाके दिल बसे, दयावन्त जिव नाहिं ।
कबीर त्यागो ताहि को, भूल देहु जनि बांहि ॥
रे मन कछु न कर सक्यो, सरयो न एको काम ।
दुबिधा में दोऊ गया, माया मिली न राम ॥ २ ॥
चींटी चावल ले चली, बीच मिली यक दाल ।
कहैं कबीर दोय ना चले, एक लेइ यक डाल ॥
आगे पीछे दिल करे, सहज मिले नाहिं आय ।
सो बासी यम लोक का, सीधा यमपुर जाय ॥४॥

॥ इति दुविधा का अंग ॥ ७२ ॥

॥ अथ असाधू का अंग ॥ ७३ ॥

जेता मीठा बोलवा, तेता साधु न जान ।
पहिले थाह दिखाइ करि, ऊंडे देसी आन ॥१॥
उज्जल देखि न धीजिये, वग ज्यों माड़े ध्यान ।
धोरे बैठि चपेटही, यों ले बूडे ज्ञान ॥ २ ॥
ज्ञानी मूल गवाइयां, आप न होय करता ।

तातै संसारी भला, निथि दिन रहै डरता ॥ ३ ॥
बांवी कूटे बावरे, सरप न मारा जाय।
मूरख बांवी ना डसे, सांप जगत को खाय ॥४॥

॥ इति असाधू का अंग ॥ ७३ ॥

॥ १३५८+४+४=१३६६ साखी ॥

॥ अथ साधू के अंग ॥

॥ अथ साधू लक्षण का अंग ॥ ७४ ॥

निर बैरी निः कामता, साईं सेती नेह।
बिष्या ते न्यारा रहै, साधू की मति येह ॥ १ ॥
साधू भँवरा जगत कली, निशिदिन रहे उदास।
पलयक तहां बिलम्बही, शीतल शब्द निवास ॥
साधु सिंधु का यकमता, जीवतही को खाय।
भाव हीन मृतक दशा, ताके निकट न जाय ॥
कमल पत्र साधू जना, बसत जगत के माहि।
वालक केरी धायज्यों, अपना जानत नाहि ॥४॥
रबि को तेज घटै नहीं, ज्यों घन जुरै घमण्ड।

साधु बचन पलटे नही, उलट जाय ब्रह्मड ॥५॥

॥ इति साधु का अंग ॥ ७४ ॥

॥ अथ साधु दुर्लभ का अंग ॥ ७५ ॥

साधु कहावन कठिन है, ज्यों खाडे की धार।
डग मग करे सो गिर पडे, निश्चल उतरे पार ॥
साधु कहावन कठिन है, जैसे लम्बी खजूर।
चढै तो चाखे प्रेम रस, गिरे तो चकना चूर ॥
बन बन तो चन्दन नहीं, शूरा का दल नांहे।
सब समुन्द्र मोती नहीं, यो साधू जग माहि ॥५॥
स्वांगी सब संसार है, साधू समझ अपार।
अनल पच्छ कोइ एक है, पच्छी कोटि हजार ॥
साधु साधु सबही बडे, अपनी अपनी ठौर।
शब्द बिवेकी पारखी, ते माथे के मौर ॥
साधु २ सब एक हैं, ज्यों पोस्ते का खेत।
कोइ बिवेकी लाल है, और स्वेत के स्वेत ॥६॥

॥ इति साधु दुर्लभ का अंग ॥ ७५ ॥

॥ अथ साधु असाधु मिश्रित का अंग ॥ ७६ ॥

संत न छाडै संतई, कोटिक मिलै असन्त ।
चन्दन भुवंत लपटा रहै, शीतलता न तजंत ॥
अतिही शीतल क्या करे, जब दुर्जन पूठे लाग ।
मथे मथानी नीकसे, चन्दन हू में आग ॥ २ ॥
साधु हजारी कापडा, रति न मैल खुटाय ।
साकट काली कामली, भावे तहां बिछाय ॥ ३ ॥
हंसी खेल हराम है, जे जन रांचे राम ।
माया मद और स्त्री, नहि साधुन को काम ॥
भक्ति भरोसे राम के, निधडक ऊंचे दीठ ।
तिनको काल न लागही, राम ठकौरी पीठि ॥
हरिजन ऐसा चाहिये, जाके ज्ञान बिवेक ।
वाहर मिलता से मिले, अन्तर सबसे एक ॥
साधु असाधु बहु अन्तरा, जैसे आम बबूल ।
वाके डाली अमर फल वाके डाली शूल ॥ ७ ॥
जात न पूछो साधु की, जो बूझो सो ज्ञान ।

मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥

॥ इति साधु असाधु मिश्रित का अंग ॥७६॥

॥ झूलना ॥

जो कोइ संत को जात पूछे उसको पेड से पैंड दीजियजी ॥
शिर छोलाय रखाय शिखा मोहडा काला कीजियजी ॥
खर पर चढ़ाय लगाय तारी पुर फेरि यह यश लीजियजी ॥
जो आय हाथ आपने तो वदन भी काला कीजियजी ॥ १ ॥
अहमक फकीर के जात पूछे अहमक जो जात बतावता है ॥
अहमक फक़ीर को और कहे अहमक़ जो और कहवता है ॥
अहमक़ फक़ीर सो नेह जोरे अहमक जो नेह मिटावता है ॥
फकीर का जात अजात है जीव दया जान कबीर बतावता है ॥२॥

साखी ॥

कहां अकाश का फेर है, कहं धरती का तौल ।
कहा संत का जात है, कहां पारस का मोल ॥

॥ आत्म अनुभव शतक से ॥

कावित्त ॥

बिप्र आदि वरण जेते सन्यासी आश्रम तेते तूसन को कूटे सो तो नीर को बिलोवते । बूझबे के योग सो सो बूझे नाही महा शोक भ्रान्ति भूत लग्यो रोग थूल दृष्टि जोवते ॥ कौने नाम कौने धाम कौने मढी कौने मठ ऐसे बूझे अट पट चिर कर दम मे धोवते ॥

देखते को नर है तो पशु महाखर भूसजंतु से बांधे शठ जागृतहीं सोवते ॥ इति ॥

॥ ॐ अथसाधू साक्षी भूत का अंग ॥ ७७ ॥

काजल केरी कोठरी, ऐसा यह संसार।
बलिहारी वा दासको, निकासि के पैठनहार ॥ १ ॥
दावे दाझन होत है, निर्दावें निःशंक।
जे नर निर दावा रहे, गने इन्द्र को रंक ॥
निसप्रेही निर्मल दशा, पकड़ा चारू खूंट।
कहै कबीर तादासकी, आस करे वै कूंट ॥
कबीर रतारता सब कोई कहै, बिनु रता कहे न कोय।
रता सोई जानिये, जातन रक्त न होय ॥४॥
जाघट में संशय बसे, ताघट राम न होय।
राम सनेही दास विच, तणा न संश रहोय ॥ ५ ॥

ॐ ॥ इति साधू साच्ची भूत का अंग ॥ ७७ ॥ ॐ

ॐ ॥ अथ साधु महातम का अंग ॥ ७८ ॥ ॐ

पुर पाटन सुबस बस्यो, आनन्द ठायो ठाय।

राम सनेही बाहिरा, सुनियो मेरे भाय ॥ १ ॥
धन धन सोतो सुन्दरी, जिन जाया साधू पूत।
राम भजन निर्भय भया, और सब गया अबूत ॥
कुल तो सोई भला, जेहि कुल उपजे दास।
जेहि कुल दास न ऊपजे, सो कुल ढाक पलास ॥
चन्दन की टुकड़ी भली, कहा बबूल लख भाव।
साधन की झोपड़ी भली, नासाकट का गांव ॥
हय गजबर सुघर घर, क्षत्रपती की नारि।
तासु पटंतर ना तुले, हरिजन की पनिहारि ॥ ५ ॥
साधुन की कुतिया भली, बुरी साकट की माय।
वह बैठी हरि यश सुने, वह निन्दा करने जाय ॥
साधु हमारे आत्मा, हम साधुन के जीव।
साधा मध्ये यों रहूं, ज्यों पय मध्ये घीव ॥
हरि दरबारी साधु है, इनसम और न कोय।
यही मिलावें रामको, इन्हे मिले जो कोय ॥
संता केरी दया से, उपजे बहुत आनन्द।

कोटि बिघ्न पलमें टले, मिटै सकल दुख द्वन्द ॥
वेद थके ब्रह्मा थके, थके जो शेष महेश ।
गीताहू की गम नहीं, तहां संत किया परवेश ॥
तीरथ गये एक फल, साधु मिले फल चार ।
सतगुरु मिले अनेक फल, कहैं कवीर विचार ॥
सिद्ध साधु का एक मता, साधु महा परचण्ड ।
सिद्ध तारे तन आपना, साधु तारे नव खण्ड ॥
साधु सीप साहेब समुद्र, निपजे मोती माहि ।
वस्तु ठिकाने पाइये, नाल खाल में नाहिं ॥
साधु खोजा राम के, धसें जो महलों मांहि ।
औरन को परदा लगे, इनके परदा नाहि ॥
हरि सेती हरि जन बडे, समझि देख मन माहिं ।
कहै कवीर जग हरि बिषे, सो हरि २ जन माहि ॥
सन्त बडे सन्सार में, हरि ते अधिक है सोय ।



बिन इच्छा पूरण करें, साहेब हरि नहि दोय ॥१६॥

॥ इति साधू महातम का अंग ॥७८॥

॥ १३६६+५+६+८+५+१६=१४०६ साखी ॥

॥ अथ साधू दर्शन का अंग ॥ ७९ ॥

साधु मिले तो हरि मिले, अन्तर रहे न रेख।
राम दुहाई सत्य कहूं, साधू आप अलेख ॥ १ ॥
साधू आवत देखि के, चरणे लागूं धाय।
का जानू यहि भेष नें, हरिही जो मिल जाय ॥
साधू आवत देखि के, हंसी हमारी देह।
माथा का ग्रह ऊतरा, नैना बधा स्नेह ॥ ३ ॥
निराकार की आरसी, साधुबहीं की देह।
लखा जो चाहे अलख को, इनहीं में लखि लेह ॥
कबीर दर्शन साधुके, बड़ भागे दर्शाय।
जो होवे सूली सज्या, काटेइ टलजाय ॥ ५ ॥
सुख देना दुख मेटना, दूर करन अपराध।
कहै कबीर वे कब मिलैं, परमेंश्वर के साध ॥

साधु बड़े परमारथी, घन ज्यों बरषे आय।
तप्त बुझावे और की, अपनो पारस लाय॥
साधु बृक्ष हरिनाम फल, शीतल शब्द बिचार।
जग में साधु होते नहीं, जल मरता संसार॥
तरुवर कदी न फल संचै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारणे, साधां धरा शरीर॥
साधु नदी जल प्रेमरस, तहां परछालो अंग।
कबीर निर्मल होय रहो, साधू जनके संग॥ १०॥
कबीर दर्शन साधु के, साहेब आवे याद।
लेखे सो दिन धारिये, बाकी के सब बाद॥ ११॥

❀॥ इति साधु दर्शन का अंग॥ ७९॥ ❀

❀॥ दर्शन बिधि का अंग॥ ८०॥ ❀

दर्शन कीजे गुरु की, दिनमें कै कै बार।
आसू जाके मेंह ज्यों, बहुत करे उपकार॥ १॥
कई बार ना होसके, दोय बार करि लेइ।
सतगुरु दर्शन के किये, काल दगा न देइ॥ २॥

दोय बार ना होसके, दिन में कर यक बार।
सतगुरु दर्शन के किये, उतरे भवजल पार ॥
एक दिना ना करसके, दूजे दिन करलेह।
कबीर सतगुरु दरश ते, पावे उत्तम देह ॥
दूजे दिन ना करसके, चौथे दिन करजाय।
कबीर सतगुरु दरशते, मोच्छ मुक्ति फलपाय ॥
बार बार ना करसके, पक्ष पच्छ करसोय।
कहैं कबीर सो दासका, जन्म सुफलही होय ॥
पक्ष पक्ष ना करसके, मांस मांस करधाय।
यांमे भेद न कीजिये, कहैं कबीर समझाय ॥
मांस मांस नहिं कारसिके, छठे मास अलबत्त।
यामे ढील न कीजिये, कहैं कबीर अविगत्त ॥
छठे मांस ना करसके, बरस दिना करलेय।
कहै कबीर सो सन्त जन, यमहि चुनौटी देय ॥
बरस बरस ना करसके, ताको लागे दोष।
कहैं कबीर या जीवसो, कबहूं न पावे मोष ॥ १०॥

मातु पिता सुत स्त्री, बंधु कुटुम्ब जो जान।
गुरु दर्शन को जब चले, येह अटकावे आन ॥
अटकाया इनका ना रहे, गुरु दर्शन करि आय।
कहै कबीर सो संतजन, मोक्ष मुक्ति फलपाय ॥

❀ ॥ इति साध दर्शन का अंग ॥ ८० ॥ ❀

१४०७+११+१२=१४३० साखी ॥

॥ अथ साधु सेवा का अंग ॥ ८१ ॥

छाजन भोजन प्रीति से, दीजे साध बुलाय।
जीवत यश हो जगत में, मुये परम पद पाय ॥ १ ॥
मै साधन के संग रहूं, अनत कहूं नाहिं जांव।
जो मोहि अरपे प्रीति से, साधन मुख होय खावं ॥
यही सेवे साधु को, साधु सेवें राम।
यामें धोखा कछु नहीं, सरे दुनो का काम ॥ २ ॥
जा घर साध सेवा नही, पार ब्रह्म पति नाहि।
सो घर मरहट सारखा, भूत बसे ता माहि ॥

निराकार निज रूप है, प्रेम प्रीति से सेव।
जो चाहे आकार तू, साधू प्रत्यक्ष देव ॥ ५ ॥
जा सुख को मुनिवर रमें, सुर नर करें बिलाप।
सो सुख सहजे पाइये, सन्तन सेवत आप ॥
कोटि २ तीरथ करे, कोटि २ कर धाम।
जब लगि सन्त न सेवई, तब लगि सरे न काम ॥
आशा बासा सन्त का, ब्रह्मा लखे न वेद।
षट दर्शन खट पट करे, बिरला पावे भेद ॥
साधू भूखे भाव के, भोजन भूखे नाहिं।
भोजन भूखे जो फिरें, ते तो साधू नाहिं ॥
हरि जी भये केतकी, भवर, भये सब दास।
जहं तहं भक्ती निर्मला, तहं तहं राम निवास ॥ १० ॥
खाली साधु न बिदा कर, सुनलीजो सब कोय।
कहै कबीर भेट धरु, जो तेरे घर होय ॥ ११ ॥
रुपैया पैला कापडा, अरु जो बासन देय।

कहै कबीर सो जगत में जन्म सुफल करि लेय ॥

॥ इति साधु सेवा का अंग ॥ ८१ ॥

१४३०+१२=१४४२ साखी

॥ अथ साधु द्रोही का अंग ॥ ८२ ॥

साधू आवत देखिके, मनमें करे मरोड ।
होय जातका चूहडा, बसे गांव के ओड ॥ १ ॥
आवत साधु न हर्षिया, जात न दीया रोय ।
कहै कबीर वा दासकी, मुक्ति कहां से होय ॥
हयगज रूसुधन धन, क्षत्र ध्वजा फहराय ।
तासुखते भिक्षा भली, हरिं सुमिरत दिन जाय ॥
राम जपत कुष्टी भला, चुइ चुइ पडता चाम ।
कंचन देही किस काम की, जासुख नाही राम ॥
साकट ब्राह्मण मतामिलो, बैष्णव मिलो चंडाल ।
जासिले सुख ऊपजे, मानो मिले दयाल ॥ ५ ॥
समधी को आदर करे, सन्त बटाऊ जान ।
तिनको कैसे होयगी, साहेब से पहिचान ॥

हरि दरिया सुभर भरा, साधां का घट सीप।
तामे मोती नीपजे, चढै देशाबर द्वीप ॥
साधू तो हीरा भया, नाभांगे घन धाय।
नावह बिगसे कुम्भ ज्यो, नावह आवे जाय ॥८॥

॥ इति साधु द्रोही के अंग ॥ ८२ ॥

१४४२+८=१४५० साखी ॥

॥ अथ सर्बज्ञता का अंग ॥ ८३ ॥

साकट हमरे कोइ नही, सवै बैष्णव झार।
संशय ते साकट भया, कहैं कबीर बिचार ॥ १ ॥
वोही तो सब एक है, परदे डारा भेष।
भरम करम सब दूर कर, सबही माहि अलेख ॥
घट बढ कहूं न देखिये, ब्रह्म सकल भर पूर।
जिन जान्या तिन्ह निकट है, दूर कहे ते दूर ॥
हरि दरिया सुभर भरा, जाका वार न पार।
खालिक बिन खाली नही, जेता सूइ संचार ॥
और ज्ञान सब भूमिया, गहे जात है लीक।

ज्ञान कबीरा चकवे, और ज्ञान मंडलीक ॥ ५ ॥

इति सर्वज्ञता का अंग ॥८३ ॥

॥ अथ हेतु प्रीति का अंग ॥ ८४ ॥

गुरु बसे जो बनारसी, शिष्य सो समुन्दर तीर।
बिसराये बिसरे नही, जो गुण होय शरीर ॥ १ ॥
लाख कोस जो गुरु बसै, दीजे सुरति पठाय।
शब्द तुरी अस्वार होय, पल पल आवे जाय ॥ २ ॥
अधिक सनेही माछली, दूजा अल्प सनेह।
जबही जलते बीछुरे, तबही त्यागे देह ॥ ३ ॥
सौ कोसा सज्जन बसे, मानो हृदया मंझार।
कपट सनेही आंगने, मानो समुन्दर पार ॥ ४ ॥
यह तत्व वह तत्व एक है, एक प्राण दुइ गात।
अपने जिवसे जानिये, मेरे जीव की बात ॥ ५ ॥
हम तुम्हरो सुमिरण करें, तुम मोहि चितवो नाहि।
सुमिरन मनकी प्रीति है, सो मन तुमरे मांहि ॥६॥
धरती आभरण पहिरिया, आवत सुनिया नाहि।

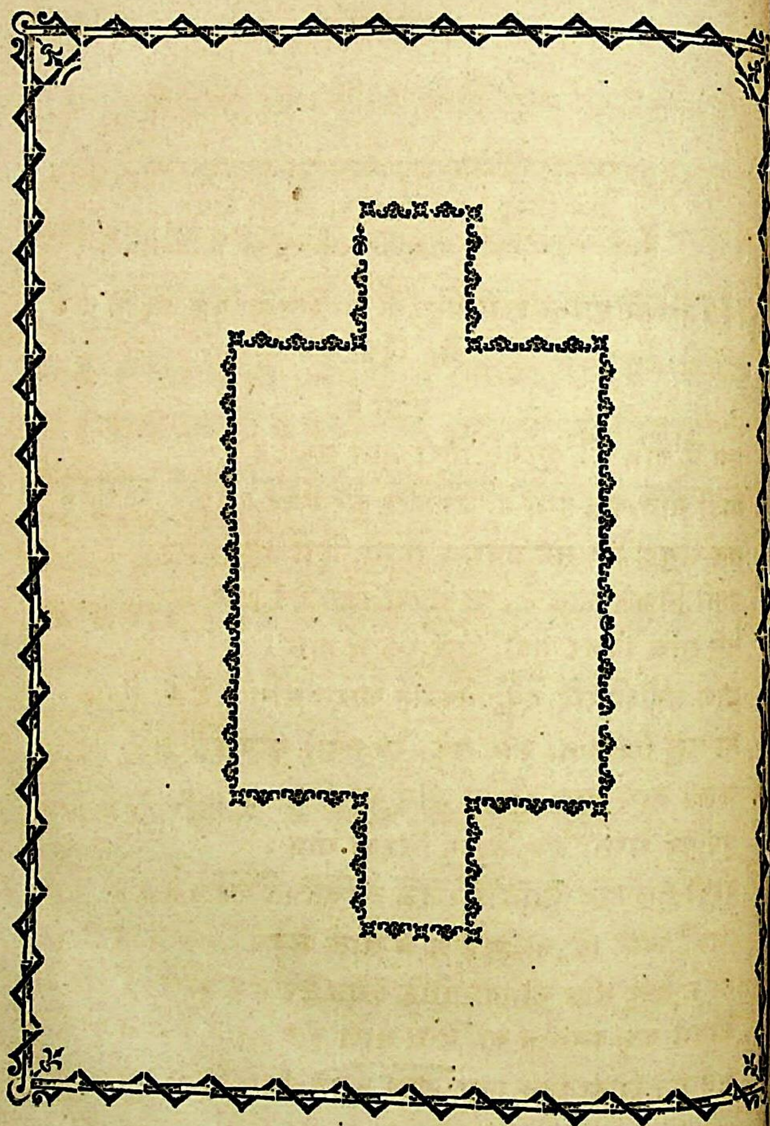
दादुर मोर पपीहरा, मिलै अगाऊ जाहि ॥७॥
मेरा मन तो तुझ से, तेरा मन कहुं और।
कहै कबीर कैसे बने, एक चित दुइ ठौर ॥ ८ ॥
प्रीति जो लागी घुल गई, पैठि गई मन माहि।
रोम रोम पिव पिव करे, मुख की शरधा नाहि॥९॥
कबीर जागत सो स्वप्नमें, ज्यों घट भीतर स्वास।
जो जन जाके भावता, सो जन ताके पास ॥१०॥
हेतु प्रीति महि पड़दा नही, शब्द मांहि नहि राय।
समझा घटका यह मता, बोले एकहि भाय ॥
सोना सज्जन साधु जन, छूट जुटै सौ बार।
दुर्जन कूम्भ कुम्हार का, एकै धका दरार ॥
प्रीति जो तासे कीजिये, जो आप समाना होय।
कबहुक जो अवगुण परे, गुणही लहे समोय ॥
प्रीत तो ऐसी चाहिये, दुइ नर एको ठांव।
घर घर मंत्र न कर सके, एक मंत्र यक गांव ॥
धनतो सबै अचेत है, खसम न बूझो बात।

जेहि जिवते सांई मिलै, ताहि सुख कहा न जात ॥
मिलना जग में अनूप है, मिलि बिछुडो जनिकोय।
बिछडा सज्जन तेहि मिलै, जिन माथे मणि होय ॥
जोइ मिलै सो प्रीत में, और मिलै सब कोय।
मनसो मनसा नामिले, तो देह मिला का होय ॥
जो दिल दिल में रहें, सो दिल कहूं न जाय।
जो दिल दिल से बाहिरा, सो दिल कहां समाय ॥
जैसी प्रीति कुटुम्बसे, तैसी हरि से होय।
कहैं कबीर वा दास का, पला न पकडे कोय॥१६॥

॥ इति हेतु प्रीति का अंग ॥ ८४ ॥

१२५०+५+१६=१४७४ साखी ॥

इति चौरासी अंग के साखी
का द्वितिय अंश तथा
कबीर संग्रह का
प्रथम भाग
समाप्तः



प्रेम विरह अङ्ग की दोहा साखी संग्रह

[जिसकी सूचना इसी ग्रन्थ के प्रेन अंग में पृष्ठ ७६ के नोट में, दिया]

दोहा ॥

तन में तानि को बूत ना, गिरी जात सब देह ।
याही गति बश होत है, जो कोइ करे सनेह ॥ १॥
तन समुद्र मन मराजिया, कहो तो गोता देउं ।
पानी निकले लाल ले, या अपना जिय देउं ॥ २ ॥
तन सूखि पिंजर भयो, रह्यो रक्त न मांस ।
प्राण छरीदा रहि गये, निकसन चाहत सांस ॥ ३ ॥
ना कछु किया ना करि सके, रैन गवांई सोय ।
खाली हाथे जात हौं, ना जानूं का होय ॥ ४ ॥
धूप पड़े धरती तपे, तापर चिटको घाम ।
दौड़ी तलफति जाति हौं, तऊ न चितवत श्याम ॥ ५ ॥
आवो प्यारे मोहना, मुंद आंख तोहिं लेउँ ।
ना मैं देखूं और को, ना तोहिं देखन देउँ ॥ ६ ॥
प्रीतम कस कर नैन का, ऐसा मारा तीर ।
तन मन सारा छिद गया, उठत करेजे पीरं ॥ ७ ॥

मन बहलावत दिन गया, महा कठिन है रैन।
हाय दई कैसे करूं, बिन देखे नहिं चैन ॥ ८ ॥
तन पर अँचरा ना रह्यो, बाढि गयो सब केश।
सुधि बुधि अब ना रही, हंसत है सिगरा देश ॥ ९ ॥
रक्त मांस तन मों नहीं, कासे पूछौं धाय।
पायन बेड़ी लाज की, जरा न सरको जाय ॥ १० ॥
प्रीतम दुखिया कै गयो, सुख को लै गयो साथ।
रैन बिछोहा है गयो, मलती रह गई हाथ ॥ ११ ॥
प्यारे तुम मत जानियो, तुम बिछुरे मोहि चैन।
जैसे वन की लाकड़ी, सुलगत है दिन रैन ॥ १२ ॥
परदेशी की प्रीति पर, सब को मन ललचाय।
वामे इतनो खोट है, रहे न सँग ले जाय ॥ १३ ॥
प्रीति तो वासो कीजिये, जासो मन पतिआय।
जने जने की प्रीति मों, जन्म अकारथ जाय ॥ १४ ॥
गहिरी नदिया अगम है, जोर बहुत है धार।
केवट से पीहले मिलो, जो उतरा चाहो पार ॥ १५ ॥



तुम बिछरत बिछरे सकल, सुख समाज आनन्द।
भई मानो निशि चन्द बिनु, यामिन जिमि विनु चन्द ॥ १६ ॥
प्रथम बचन की प्रीति करि, मिलिये प्रीतम धाय।
ताजि बाते घाते कपट, हे मोहन ममराय ॥ १७ ॥

तज्यो कौन अपराध तें, मन मोहन मम ग्राम।
तव दर्शन के आसरे, नैन खड़े मग धाम ॥ १८ ॥
विरह रोग तन मन दहैं, कल न पडै दिन रैन ॥
प्रीतम काहू के कहे, लागे हाय न नैन ॥ १९ ॥
प्रीति रीति तुम आगली, सबे दई बिसराय।
ऐसी कोऊ करत है, जैसी तुम की जाय ॥ २० ॥
प्रीतम प्रीति लगाय तुम, कहां गये परदेश।
विरह रोग वश है यहां, जटा जूट भय केश ॥ २१ ॥
हमतो तजि कुल कान सब, तुम सन कीनी प्रीति।
तुम निर्मोही निठुर है, करन लगे बिपरीति ॥ २२ ॥
हमरी वाही गति भई, माया मिली न राम।
प्रीति करी सो ना भई, गांव धरे सब नाम ॥ २३ ॥
गुरुजन हटकी ना सुनी, धाय करी हम प्रीति।
सोई अब सब लखि पडे, देन लगे दुख मीत ॥ २४ ॥
प्रीति करी सुख लहन को, तन मन धन विसराय।
सो लागी दुख देन अब, करिये कौन उपाय ॥ २५ ॥
अरे पपीहा निर्दई, बोल न आधी रात।
विरह अग्नि तन मन दहै, जरो जाय सब गात ॥ २६ ॥
प्यारे तुमरी सुधि हमै, एक घडी बिसरैन।
तलफि तलफि जिय जाय अब, पडै नहीं चित चैन ॥ २७ ॥
हम व्याकुल तपड़े यहां, तुम करो चित चैन।

ऐ प्यारे मन मोहना, प्रीति रीति ये हैन ॥ २८ ॥
प्रीति लागी ना छुटे, करिये कोट उपाय ।
गुरुजन अरु सब गांव घर, जो चाहे समझाय ॥ २९ ॥
बिधिना काहू के कहूं, लागे हाय न नैन ।
तलफि तलफि जिय जात है, क्षण पल पड़े न चैन ॥ ३० ॥
प्रेम रोग क्षण क्षण बढै, औ क्षण क्षण अधिकाय ।
बैद ऐद जाने नहीं, जानि सब करो उपाय ॥ ३१ ॥
प्राण प्यारे मोहना, दरश देहु अब आय ।
तलफत बीते बहु दिवस, सो अब सह्यो न जाय ॥ ३२ ॥
अग्नि बिरह तन मन दहै, निकसन चाहत प्रान ।
दर्शन आशा लागि रही, कृपा करो अब आन ॥ ३३ ॥
चूक हूक कैसे मिटै; जौ लौं जान न जाय ।
चलत समय पिय प्राण को, गह्यो न कोऊ धाय ॥ ३४ ॥
हमसे प्रीति बढ़ाय तुम, चले गये परदेश ।
निर मोही ऐसे भये, पठयो नाहि सँदेश ॥ ३५ ॥
हम जानो कछु दिनन लौं, भई जान पहिचान ।
सो विधिना ऐसी रची, दर्शनहू की हान ॥ ३६ ॥
अब मन मोहन आपबिन, पल क्षण पड़ै न चैन ।
तलफि तलफि बीते हमै, प्यारे वह दिन रैन ॥ ३७ ॥
बहु दिन बीते दरश बिनु, कृपा करो अब आय ।
व्याकुल प्यारे लखि हमैं, हिय से लेहु लगाय ॥ ३८ ॥

दर्शन आशा लागि रही, निकसे नाही प्रान।
कर जोरे बिनती करौं, दया करो अब आन ॥ ३९ ॥
औरन सो करि प्रीति तुम, हमें दियो बिसराय।
कौन चूक मोते पड़ी, जानि पड़े नहि हाय ॥ ४० ॥
ऐसो तुमको चाहिये, कहो तो प्राण के नाथ।
जैसी तुम हमसों करी, छोड़ि हमारो साथ ॥ ४१ ॥
हरि से प्रीति लगाय के, पड़ो हमैं पहिचान।
हम जानी निभ जायगी, उन कुछ औरै ठान ॥ ४२ ॥
तुमरी मधुरी बैन पर, कौन करे बिश्वास।
जैसी कुछ तुम से भई, हती न ऐसी आस ॥ ४३ ॥
प्राण प्यारे श्याम की, विथा सही नहीं जात।
मुर्छित है धरणी गिरौं, बार बार पछतात ॥ ४४ ॥
बिरह बान उर अस लगे, निकसन चाहत प्रान।
अब अनाथ हमको समुझि, कृपा करो तुम आन ॥ ४५ ॥
तलफौं अति व्याकुल पड़ी, नैनों आसूं जाय।
निकसन चाहत प्राण है, देखौं तो अब आय ॥ ४६ ॥
ऐसेही दिन चार लौं, करी देर जो और।
खाय हलाहल यह सबै, व्है रहि हैं यक ठौर ॥ ४७ ॥
तड़पि तड़पि जिय जात है, पड़े नहीं हिय चैन।
जब ते प्रीतम तुम गये, रोवत हैं यह नैन ॥ ४८ ॥
कुबिजा अति प्यारी भई, हमें दियो बिसराय।
कौन हमारी प्रीति अब, कहां करौ तुम आय ॥ ४९ ॥

अब मै कैसी करों, बिन देखे नहीं चैन।
जैसे जल बिन माछली, तलफत हौं दिन रैन ॥ ५० ॥
श्री मन मोहन सांवरे, दरश देहु अब आय।
यातो तुम मुझ विरहिनि को, वहां लेहु बुलाय ॥ ५१ ॥
मगहेरत अंखिया थकी, पर्‌यो विरह को फेर।
दर्शन आशा लागि रही, करो श्याम जानि देर ॥ ५२ ॥
प्यारे जो मैं जानती, प्रीति किये दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीति करे ना कोय ॥ ५३ ॥
पड़ी हाल बेहाल हूं, सुनियो प्यारे लाल।
तुम बिन मोहन आय के, पूछे कौन हवाल ॥ ५४ ॥
प्यारे तेरी याद में, पड़ी रहौं बेचैन।
मुर्छित ह्वै धरणी गिरौं, यही हाल दिन रैन ॥ ५५ ॥
प्रीतम प्यारे प्रीति करी, लह्यो न कोऊ सुख।
बाढ़त अब प्रति दिन अहै, शोक रोग औ दुख ॥ ५६ ॥
हमको कछू भावे नहीं, गुरुजन का उपदेश।
तुम बिनु सूनो सब लगै, जैसे मणि बिनु शेश ॥ ५७ ॥
प्यारे आवो श्यामजी, हिय मैं लेहु लगाय।
नाहीं तो अब यक दिवस, मरि रहिहौं बिष खाय ॥ ५८ ॥
विरह वियोग धारण करौं, जटा व नाऊं केश।
देह उड़ाऊं तन दहौं, जैसे स्वाग महेश ॥ ५९ ॥
हमरी सुधि बिसराय तुम, वहां रहे का छाय।

तड़पि तड़पि जिय जात है, दरश देहु अब आय ॥ ६० ॥
नैनन आशा लगि रही, कब मिलि हौ तुम आय ।
प्यारे क्षणहू चैन नहीं, तलफि २ जिय जाय ॥ ६१ ॥
प्यारे अब भेटिहौ कभूं, जानि कहू विरह रोग ।
मिलबो तुम्हरो लखि पड़े, नदी नाव संयोग ॥ ६२ ॥
नैना हाय लगाय के, कल न पड़े दिन रैन ।
वे बिछरे जब से सखी, नहीं जिया को चैन ॥ ६३ ॥
नयनन की करि कोठरी, पुतली देउं बिछाय ।
पलकन की चिक डाल दूं, साईं बैठो आय ॥ ६४ ॥
जिन नैनन सौं देखते, कहां गये वह नैन ।
तिल तिल प्रीति बढ़ाय के, अब लागे दुख देन ॥ ६५ ॥
भँवरा लोभी दरश का, कली कली रस लेइ ।
कांटा लागा प्रेम का, हेर फेर जिय देइ ॥ ६६ ॥
सजन सकारे जांयगे, नैन मरैंगे रोय ।
विधिना ऐसी रैन कर, भोर कभी ना होय ॥ ६७ ॥
प्रीतम प्यारे चल गये, नदी करार करार ।
आप तो पार उतरि गये, हमें छाड़ि मझधार ॥ ६८ ॥
पंख नहीं बे पंख हूं, बे पर उड़ा न जाय ।
दर्शन प्यारे श्याम के, केहि विधि होवे आय ॥ ६९ ॥
प्रेम रोग कैसे कटे, लग्यो विरह को बान ।
हमें न औषध चाहिये, मत हो वैद्य अजान ॥ ७० ॥

मथुरा काशी भरमिथे, हमैं देत विश्वास ।
घटही भीतर हरि बसैं, क्यों खोजत आकास ॥ ७१ ॥
व्याकुल जल बिनु मीन ज्यों, तलफि तलफि जिय देइ ।
सोई गति मेरी भई, कोऊ खबर न लेइ ॥ ७२ ॥
बरछी लागी प्रेमकी, धरे नहीं जिय चैन ।
विरह विथा सरसात है, प्यारे जी दिन रैन ॥ ७३ ॥
निकसत नाहीं प्राण है, प्यारे तुमरी आस ।
नैन पियासे दरश के, रटत पियास पियास ॥ ७४ ॥
समझाये समझत नहीं, रोवत है निज नैन ।
व्याकुल प्यारे दरश बिनु, तलफत है दिनरैन ॥ ७५ ॥
चातक चाहत स्वातिजल, चकई चाहत भोर ।
बिरहनी पिया मिलवो चहे, चन्द्र चहे चकोर ॥ ७६ ॥
हरि होत बौरी भई, तन मन धन बिसराय ।
जानि बूझि मति वश भई, हृदय लिया लगाय ॥ ७७ ॥
पिय सपने में आय के, ले गयो मोर प्रान ।
जानि बूझ मति वश भई, हंसि के भई नदान ॥ ७८ ॥
अरे पपीहा बावरे, मतले पी का नाम ।
तू उड़ि जा इस देश से, यहां तेरा क्या काम ॥ ७९ ॥
हमसे प्रीति लगाय के, कुलटा के घरजात ।
मन मोहन मूरख भये, मुख से कही न बात ॥ ८० ॥
हमसे प्रीति बढ़ाय के, चले गये परदेश ।

हम बिरहिनी तरसत फिरै, पठयो नाहि संदेश ॥ ८१ ॥
छांड़ि अकेले पिउ हमें, गये कौन धौं देश ।
ना जानों कब आइहै, जटा जूट भय केश ॥ ८२ ॥
जब सुधि आवे पीवकी, टप टप टपकत नैन ।
मुराछित ह्वै धरणी गिरौं, कोउ विधि पड़ै न चैन ॥ ८३ ॥
प्यारे तुमरी सुधि हमें, क्षणहु बिसरत नाहि ।
दर्शन बिनु जिय जात है, उठत कराहि कराहि ॥ ८४ ॥
मग जोहत नैना थके, छुटी मिलन की आस ।
मुर्छित ह्वै धरणी गिरौं, कोऊ आस न पास ॥ ८५ ॥
प्यारी तुमरी विरह में, नदी भये निस नैंन ।
तन मन कटि कटि यों गिरत, ज्यों करार दिन रैन ॥ ८६ ॥
निशि दिन मन व्याकुल रहै, विरह दियो तन फूंक ।
तुम बिछुरत सुधि जब करौं, उठै करेजे हूक ॥ ८७ ॥

॥ सूचना ॥

बिरह तथा प्रेम अंगकी साखियां दोहे दूसरे भाग के अन्तमें दिये जांयगे पाठकगण वहां से देखलेवें ॥

युगलानन्द.

रसीदपुर शिवहर.

❁ ॥ इति प्रथम भाग ॥ ❁



॥ सतगुरुकीदया ॥

कबीर संग्रह

॥ अङ्ग की साखी ॥

दूसरा भाग

जिसको
रसीदपुर शिवहर जिला मुजफ्फरपुर निवासी
श्री युत युगलानन्द जी पथिक ने संग्रह किया

Collection of Kabir Sahib's
Filosophy Teaching.
BY
Gugulanand K. P. Y.

मुन्शी गङ्गाप्रसाद वर्म्मा ऐ० ब्रादरान यंत्रालय
लखनऊ में मुद्रित होकर
प्रकाश हुआ ॥

॥ अथ साक्षी भूत का अंग ॥ १ ॥

कबीर पूछे राम की, सकल भवन पति राय।
सबही कर न्यारा रहै, सो बादि देहु बताय ॥ १ ॥
जिस बेरिया सांई मिले, तासन जाने और।
सबको सुखदे शब्द का, अपनी अपनी ठौर ॥
पारस रूपी नाम है, लोहा रूपी जीव।
जव जाय पारस भेटही, तब जाय होसी शीव ॥
दया कौन पर कीजिये, कापर निर्दइ होय।
सांई के सव जीव हैं, कीरा कुंजर सोइ ॥ ४ ॥

॥ इति साक्षी भूत का अंग ॥ १ ॥

॥ अथ ब्यापक का अंग ॥ २ ॥

जेता घट तेता मता, बहु बाणी बहु भेष।
सब घट ब्यापक होय रहा, साईं आप अलेख ॥१॥
सब घट मेरा साइयां, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट की, जाघट प्रकट होय ॥
जात जातके पाहुना, जात जातके जाय।

साहेब जात अजात है, सब घट रहा समाय ॥
बालक रूपी साइयां, खेले सब घट माहि ।
जो चाहे सो करत है, भय काहू का नाहि ॥ ४ ॥
दर्द मंद कोइ जानही, सब घट व्यापक पीर ।
सब घट व्यापक होय रहा, रमिता राम कबीर॥५॥

॥ इति व्यापक का अंग ॥ २ ॥

॥ अथ अद्वेत का अंग ॥ ३ ॥

भूला भूला क्यों फिरे, शिर पर बधिगई बेलि ।
तेरा साईं तुझ में, ज्यों तिल माही तेल ॥ १ ॥
ज्यों तिल माही तेल है, ज्यों चकमक में आग ।
तेरा साईं तुज्झ में, जाग सकै तो जाग ॥ २ ॥
राम कबीरा एक है, चीन्हे बिरला कोय ।
अन्तर टाटी भरम की, ताते दीसे दोय ॥
राम कबीरा एक है, कहन सुनन को दोय ।
दोय करि सोही जानई, सतगुरु मिला न होय ॥

॥ इति अद्वेत का अंग ॥ ४ ॥

४+४+४= १२ साखी ॥

॥ अथ कसतुरिया मृगा का अंग ॥ ५ ॥

कस्तूरी तो कूँडल बसे, मृगा ढूढे बन माहि ।
जैसे हरि घट घट बसे, मूरख जाने नाहि ॥ १ ॥
देखे कोई सन्त जन, पांचो जाके हाथ ।
पांचो जाके हाथ नहीं, तहं हरि सँग न साथ ॥
साधू सोई सूरमा, राखे पांचू चूर ।
जिनका पाचो मोकला, तिनसो साहेब दूर ॥
सो साहेब हृदयबसे, मरम न जाने तासु ।
कस्तूरी का मृग ज्यों, फिरि फिरि ढूढे घास ॥ ४ ॥

॥ इति कस्तुरिया मृगा का अंग ॥ ५ ॥

॥ अथ भर्मिक जन का अंग ॥ ६ ॥

ज्यों नैना में पूतली, यों खालिक घट माहि ।
मूरख लोग न जानही, वाहर ढूढन जाहिं ॥ १ ॥
कबीर खोजी राम का, गया सो सिंगल द्वीप ।
राम तो घटही में बसे, जो आवे परतीत ॥ २ ॥
कबिरा बहुत भटकिया, मन ले विषम विराम ।

ढूढत ढूढत जग फिरा, तिनके ओटे राम ॥ ३ ॥

❀॥ अथ भरमिक जनके उपदेशका अंग ॥७॥ ❀

राम नाम तिहुं लोक में, सकल रहा भरपूर।
जिन जान्या तिन्हे निकट है, दूर कहे ते दूर ॥४॥
जा जाकरण जग ढूढता, सो तो घटही माहिं।
परदा दीया भ्रम का, ताते दीसे नाहिं ॥ ५ ॥
समझो तो घट में रहो, परदा पलक लगाय।
तेरा साईं तुझ में, अन्त कहां को जाय ॥ ६ ॥

॥ इति भर्मिक जन के उपदेश का अंग ॥७॥

॥ अथ मूरख का अंग ॥ ८ ॥

गुण क्रिया जानै नहीं, अवगुण सबे गहंत।
मूरख नर की रीति यह, कहै कबीरा सन्त ॥
गुण गाडै अवगुण खनै, जिभ्या कुटक कोदार।
ऐसा कलियुगि देखिया, नरक जाय यम द्वार ॥

॥ अथ मूरख को उपदेश व्यर्थ का अंग ॥९॥

मूरख को समझावते, ज्ञान गांठ का जाय।

कोइला होय न ऊजरो, नौ मन साबुन लाय ॥१॥
जाने हरिया रूखडा, पानी हृदया नेह ।
सूखा काठ न सानही, कण घर बूठा मेंह ॥ २॥
झर मर झर मर बर्षिया, पाहन ऊपर मेह ।
धरणी गलि सजल भई, पानी ऊनी नेह ॥ ३ ॥
कबीर हरि रस बर्षिया, डर डूगर शिखराय ।
नीर नवाना ठारिया, डर डूगर न ठहराय ॥४॥
मूरख सो क्या बोलिये, शठसो कहां बसाय ।
पाहन मों क्या मारिये, चोखा तीर नशाय ॥ ५ ॥
शर तो ताको मारिये, जो शर लायक होय ।
मारे शर पाषाण में, शरही जाय बिगोय ॥ ६॥
दुष्ट कार्मिया मानवा, नख शिख भरा विकार ।
बाहण हारा क्या करे, बाण न लगे लगार ॥७॥
परसे चन्दन बावना, बिष नहि तजै भुजंग ।
वह चालै गुण आपने, कहां करे सतसंग ॥ ८ ॥
पशुआ से पाले पड्यो, रहि रहि हिये में खीज ।

ऊसर पडा ना नीपजे, भावे तेता बीज ॥ ६ ॥
एक शब्द में सब कहें, गुरु शिष्य समझाय ।
समझाया समझे नहीं, फिरि फिरि पूछे आय ॥

॥ पद ॥

कहा स्वान को स्मृति सुनाये । कहां साकट पहं हरिगुण गाये ॥१॥
राम राम राम रमे रमि रहिये । साकट सों भूलि न कहिये ॥ २ ॥
कौआ कहां कपूर चराये । कहं बिषियर को दूध पियाये ॥ ३ ॥
सत संगति मिलि बिवेक बुद्धि होई । पारस परसि लोह कंचन सोई ४ ॥
साकट स्वान सब करें कराया । जो धुरि लिखा सो करम कमाया ॥५॥
अमृत लै लै नीमहि सिंचाई । कहें कबीर वाको स्वभाव न जाई ॥६॥

॥ अथ हंस बग पहिचान का अंग ॥ १० ॥

कबीर लहर समुन्द्र की, मोती बिखरया आय ।
बगुला सार न जानहीं, हंसा चुगि चुगि खाय ॥
हंस बगुला एक रंग, एके ताल चुगाय ।
बगुला ढूंढे माछली, हंसा मोती खाय ॥ २ ॥
हंसा वक देखो एक रंग, चरे एकहीं ताल ।
हंस छीर ते जानिये, बक उघरे तेहि काल ॥ ३ ॥

ज्ञानी हो अथवा अज्ञानी व्यवहार दोनों का तुल्य होता है, प्रन्तु शक्ती अशक्ती का भेद है ॥ ज्ञानी बिचार द्वारा निर्लेप रहता है अज्ञानी क्रिया में बंधमान होता है ॥ ज्ञानवान मोक्ष रूप है, अज्ञानी दरिद्री है ॥ क्योंकि जैसे जाल से वनमें पक्षी फंसता है, तैसे ही अज्ञानी लोक व्यवहार में बन्ध मान होता है ॥ व्यवहार जैसे (खाना पीना सोना, चलना, लेना, देना, मिलना आदि) ज्ञानी करता है, वैसेही अज्ञानी करता है॥ अज्ञानी बासना सहितबंधमान है ॥ ज्ञानी अज्ञानी में केवल बासना मात्र भेद है, ॥

॥ साखी ॥

चन्दन वास निवारहु, तुझ कारण वन काटिया।
जीवत जीव जनि मारहु, मुयेते सबै निपातिया ॥

जब तक शरीर है तब तक शरीर के सब धर्म तथा दुख सुखभी होता है, प्रन्तु ज्ञानवान दोनों में शांत बुद्धि रहता है, और अज्ञानी हर्ष शोक से तपायमान होता है ॥ जैसे जलमें सूर्य्य का प्रतिबिम्ब (हवा के झकोरे से) हिलता भासता है, प्रन्तु यथार्थ में ज्योंका त्योंही रहता है, उसीप्रकार शरीर सम्बन्ध से सुःख दुःख के होनेपर ज्ञानवान हर्षशोक युक्त भासता है, परन्तु यथार्थ हृदयमें धीर्य्य संयुक्त शांत होता है ॥

ज्ञानवान (यथार्थ भेद के ज्ञाता होने के कारण) सर्व क्रिया करता है तौ भी मोक्ष रूपही है। अज्ञानी (मूर्खता वश) सब क्रिया त्याग करताहै तौभी बन्ध मानही रहता है ॥ अन्तः करणसे जो अना-

स्म धर्म में वन्धमान है, और बाहर कर्म इन्द्रिय के कार्य से मुक्त है॥ तौ भी बन्धन में है, ऐसे अज्ञानी का वैसेही हाल है कि जैसे कोइ सांप को छोड उसके विल (वांबी) को कूटे ॥

और जो अन्तः करण से सब से निराश वासना रहित है वह ऊपर से सब व्यवहारों को करते हुये भी मुक्त है ॥

साखी ॥

जो बिचार गुरु बोध को. जा घट होय प्रकाश।
ते गेही गुरु रूप है, तरे तारु अन्यास ॥

जो सब क्रिड़ा को त्याग बैठा है, और हृदय में जगत की आस्था रखता है, वह चाहे कुछ करे अथवा नकरे परन्तु बन्धन मे ही है और खब व्यवहारों को यथा रीति करता है और हृदय से पारख संयुक्त आस्था रहित है वह मोक्ष ही है ॥

साखी ॥

गुरु मत जो विमल अति, पावे गुरु सम होय।
गृह बाधा तेहि नाकरे, रहे अपनो पद जोय ॥

❀॥ इति हंसवक पहिचान का अंग ॥ १० ॥❀

॥ अथ अधिकारी दुर्लभ का अंग ॥ ११ ॥

ऐसा कोई ना मिला, जासे रहिये लाग।
सब जग जलता देखिया, अपनी २ आग ॥ १ ॥

ऐसा कोई ना मिला, हम को दे उपदेश ।
भव सागर में डूबता, कर गहि काढे केश ॥
ऐसा कोई ना मिला, राम भक्त का मीत ।
तन मन सौंपू मृग ज्यों, सुनू बधिक की गीत ॥
ऐसा कोई ना मिला, हम को ले पहिचान ।
अपना करि कृपा करे, ले उतरे मैदान ॥ ४ ॥
ऐसा कोई ना मिला, जासे कहूं निशंक ।
जाको हृदया की कहूं, सो फिर मांडै बंक ॥५॥
ऐसा कोई ना मिला, सब बिधि देइ बताय ।
शून्य मंडल में पुरुष है, तहां रहे लौ लाय ॥६॥
तीन सनेही सब मिले, चौथा मिले न कोय ।
सबै पियारे राम के, बैठा परबस होय ॥७॥
जग देखत हम जात है, हम देखत जग जाय ।
गिना दहाडा माहि सो, यक यक घट तो जाय ॥



प्रेमी ढूंढत मैं फिरूं, प्रेमी मिला न कोय ।
प्रेमी को प्रेमी मिलै, तौ विष अमृत होय ॥ ६ ॥
माया मिलै मोहिनी, आखै कडुआ बैन ।
कोई बिधि घायल ना मिला, साईं हृदया सैन ॥
सरपे दूध पियाइया, सो पुनि विष ह्वै जाय ।
ऐसा कोई ना मिला, जो सरपे विष खाय ॥
जैसा ढूढत मैं फिरूं, तैसा मिले न कोय ।
तत्ववेता त्रिगुण मता, निर्गुण राता होय ॥ २ ॥
॥ इति अधिकारी दुर्लभ का अंग ॥ ११ ॥

+१२= साखी

अथ पिया पहिचान का अंग ॥

अथ ओंकार का अंग ॥ १२ ॥

ओं ओंकार निश्चय भया, याको किरतम ज्ञान ।
सांचा शब्द कबीर का, परदा में पहिचान ॥ १ ॥
हरिया होय सूखै सही, यह त्रयगुण व्यवहार ।
कबीर सुमिरे तासु को, जाका सकल पसार ॥२॥

॥ अथ (१) अलख का अंग ॥ १३ ॥

अलख पलक में खपगया, निरंजन गया बिलाय।
अविगति भजूं तो गति नही, भजूं कवनसो लाय॥
अलखअलख सब कोइकहे, अलख लखे न कोय।
अलख लखा तब सबलखा, लखा अलख नहिहोय॥
लखन हारे सो लखि हैं, जाको है गुरु ज्ञान।
शब्द सुरति के अंतरे, अलख पुरुष निर्वान॥
हमतो लखा तिहु लोक में, तू क्यों कहे अलेख।
सार शब्द जानै नही, धोखे पहिरा भेख॥
थकत थकत जग थाकिया, थाका सबही खलख।
देखत नजर न आइया, हारि कहा अलख॥ ५॥
थकत थकत जग थाकिया, भये जो नाना खून।
देखन नजर न आइया, हारि कहा बेचून॥६॥

---

(१) इस अंग की साखियां देख पाठकगण के चित्त में बहुत से शंका उत्पन्न होंगे. उसके निवारन के लिये पंचग्रंथी देखना उचित है॥

* खलख=खल्क=दुनिया=संसार॥

वेचूने जग राचिया, साहेब नूर निनार।
आखिर केरे वक्त में, किसका करे दीदार॥
निरंजन जेजिव जपत हैं, तिनकी तो गति नाहि।
घूघू होयगा वापुडा, दिन को सूझै नाहि॥ ८॥

॥ अथ ज्योति का अंग ॥ १४॥

अधर मध्य के सून्य में, दीवा कीसी लोय।
कहै कबीर कर्ता नही, वाते कछू न होय॥
ब्रह्मा पूछे जननि सो, कर जोरी शीश नवाय।
कवन रूप सो पुरुष है, कहु माता समझाय॥
रेख रूप जोहि है नही, अधर धरी नहि देह।
गगन मण्डल के बीच में, रहता पुरुष बिदेह॥
धरे ध्यान गगन में, लावे बज्र केवाल।
देखि प्रतिमा आपनी, तीनो भये निहाल॥
जासो नाता आदिका, बिसरि गया सो ठौर।
चौरासी के बस परे, कहत और के और॥
संपुट माहि समाइया, सो साहेब नहि होय।

सकल माडि में रमि रहा, मेरा साहेब सोय ॥

॥ अथ राम पहिचान का अंग ॥१५॥

तीन लोक जपत है रामको, जानि मुक्ति का धाम।
राम बशिष्ट मुनि गुरु किये, तिनकहि सुनाया नाम॥
जगमें चारू राम हैं, तीन राम व्यवहार।
एक राम तत्व सार है, ताका करो बिचार ॥
प्रथम सालिग्राम है, दूजा है परशुराम।
तीजा राजा राम है, चौथा आतम राम ॥
समुन्द्र पाटि लंका गये, सीता को भरतार।
ताहि अगस्त्य अंचि गये, दो में को करतार ॥

॥ मानुष विचार से ॥

बहु महिमा लीला रघुराई। बालमीकि शंकर गुण गाई ॥
केकइ सौत संशय उरआनो। दशरथ छली काम बशजानो ॥
दशरथ बचन राम वन गवना। सीता हरण किये तहं रवना ॥
तासो मोह विकल भय भारी। कपिदल साजि रावण मारी ॥
राज कर्म में भये पुनीता। निश्चर निकर अपर बल जीता ॥
कल्याण हेतु संशय उरआई। मुनि बशिष्ट ब्रह्म ज्ञान दृढ़ाई ॥
अन्तस ब्रह्म ज्ञान अभिमानी। पूजा पाठ बहुत उन ठानी ॥

॥ अथ कृष्ण का अंग ॥ १६ ॥

गोबरधन धारे श्री कृष्ण, दवना गिरि हनुवन्त।
शेष सृष्टि शिर पर धरी, इन में को भगवन्त ॥

लीला कृष्ण बरणि बहु भांती । धरे ध्यान दिवस औ राती ॥
राम कृष्ण अहीर के बालक । बृज बधू कौरव कुल घालक ॥
सोरह कला जाने बहु भांती । छली अनेक कामिनि उत्पाती ॥
कामिनि छली रूप अधिकाई । अबला मोहे बांस बजाई ॥
तिनके संग क्रिड़ा बहु करई । कामातुर सो पायन परई ॥
विषय बासना निशिदिन धावैं । ब्रह्म अच्युतानंद कहावैं ॥
सो सखियन से रहे अनुकूला । बेद बेदांत कथे रहे भूला ॥
राज काज जब भय अधिकारी । बिरह व्यथा व्याकुल बृजनारी ॥
गोपिन विरह अनल तनजारी । तासु लोक गोलोक बिचारी ॥
कपटी झूठा बात लबारी । अनेकन राजा छल सो मारी ॥
पांचो पाण्डव मन कर्म बानी । ताके सेवा रहे लपटानी ॥
अर्जुन को ब्रह्म ज्ञान दढ़ाई । संशय गांठ न अनते जाई ॥
विराटरूप माया दिखलाया । भांति भांति का त्रास बताया ॥
दुर्योधन सो युद्ध कराई । कुल परिवार को मार ढहाई ॥
पुनि सो कहा भया अपराधा । अश्वमेध करो जेहि मिटै उपाधा ॥
जो जो कहा सो सब कछु कीन्हा । कोइ बात सो चूक न लीन्हा ॥
अंतकाल चाहिये कल्याना । गळे हिमालय जाय अज्ञाना ॥

कृष्ण समीपी पाण्डवा, गले हिमाले जाय ।
लोहे को पारस मिले, काहे काई खाय ॥
सोइ अवतार गोसाई भाखा । सुयश बहुत पोथी लिखि राखा ।
ब्रह्म ज्ञान कथे ब्रह्म कहावै । नाम हेतु बहु पंथ बढ़ावे ॥
सोइ सोइ पाठ करहि लवलाई । संशय गांठ दिन दिन अधिकाई ॥

॥ अथ अवतार का अंग ॥ १७ ॥

निबल सबल जो जान कर, नाम धरा जगदीश ।
कहै कबीर जन्मे मरे, ताहि धरूं नहीं शीश ॥१॥
चारि भुजा के भजन में, भूल गये सब सन्त ।
कबीर सुमरे तासु को, जाके भुजा अनन्त ॥२॥

॥ चौपाई ॥

जगमें भये जेते बलधारी । महिमा एक अनेक संवारी ॥
मच्छ कच्छ शूकर वपुधारा । जो जो कर्म किया संसारा ॥
नरहारि वामन छल अधिकारी । परशुराम क्षत्री जिन मारी ॥
बहु महिमा लीला रघुराई । लीला कृष्ण बरनि नहिं जाई ॥
जगन्नाथ प्रतिमा बनाई । कृष्ण पिंड गाडा तहं जाई ॥
बुध गया जो बौद्ध अवतारा । जाके पंथ जैन संचारा ॥
दत्तात्रये व्यास कविनाना । गिनती चौविश करहि बखाना ॥
एक आश आगे लघ लावे । कलि विषहरण कलंकी गावे ॥

॥ साखी ॥

साहेब सबका बाप है, बेटा किसी का नाहि ।
बेटा होकर ऊतरा, सो तो साहेब नाहि ॥ ३ ॥

॥ शब्द आठवां बीजक का ॥

संतो आवे जाय सो माया ।
है प्रतिपाल काल नहिं वाके, ना कहुं गया न आया ॥ १ ॥
क्या मकसूद मच्छ कच्छ होना, शंखासुर न संहारा ।
अहै दयाल द्रोह नहि वाके, कहो कौन को मारा ॥ २ ॥
वह कर्ता नहिं बराह कहावे, धरणि धरै नहि भारा ।
ई सब काम साहेब के नाही, झूठ कहै संसारा ॥ ३ ॥
खम्भ फोरि जो बाहर होई, ताहि पतीज सब कोई ।
हिरण्य कश्यपु नख उदर बिदारे, सो नहि करता होई ॥ ४ ॥
बावन रूप ना बलिको यांचे, जो यांचे सो माया .
बिना बिवेक सकल जग जहंडे, माये जग भर्माया ॥ ५ ॥
परशुराम क्षत्री नहि मारा, ई छल मायहि कीन्हा ।
सतगुरु भक्ति भेद नहि जाने, जीव अमिथ्या दीन्हा ॥ ६ ॥
सिरजन हार न ब्याही सीता, जल पाषान नहिं बंधा ।
वै रघुनाथ एक कै सुमिरे, जो सुमिरे सो अन्धा ॥ ७ ॥
गोपी ग्वाल गोकुल नहि आये, करते कंस न मारा ।
है मिहरवान सबन को साहेब, नहि जीता नहि हारा ॥ ८ ॥
वै करता नहि बौद्ध कहावै, नहीं असुर को मारा ।

ज्ञान हीन कर्ता कै भरमे, माये जगत संहारा ॥ ९ ॥
वह करता नाहि भया कलंकी, नही कलिंगहि मारा ।
ई छल बल सब माये कीन्हा, यतिन सतिन सब टारा ॥ १० ॥
दश अवतार ईश्वरी माया, करता कै जनि पूजो ।
कहै कबीर सुनो हो संतो, उपजे खपे सो दूजो ॥ ११ ॥
॥ इति शब्द ॥ ८ ॥

॥ अथ साहेब पहिचान का अंग ॥ १८ ॥

जन्म मरण ते रहत है, मेरा साहेब सोय ।
बलिहारी उस पीव की, जिन सिर्जा सब कोय ॥
पिण्ड प्राण नहिं तासु के, दम देही नहिं सीन ।
नाद बिन्दु आवे नहीं, पांच पचीस न तीन ॥ २ ॥
मुहं माथा जाके नहीं, नहीं रूप अरूप ।
पुहुप बास से पातला, ऐसा तत्व अनूप ॥ ३ ॥
है निराला माड ते, सकल माड तेहि मांहि ।
कबीर सेवे तासु को, दूजा सेवै नाहिं ॥ ४ ॥
नेव बिहूना देहरा, देह बिहूना देव ।
तहां कबीरा बन्दगी, अलख पुरुष की सेव ॥ ५ ॥
साहेब कहिये एकही, दूजा कहा नजाय ।

दूजा साहेब जो कहूं, साहेब खरा रिसाय ॥ ६ ॥
साहेब कहिये एकही, दूजा कहा न जाय ।
दूजा साहेब जो कहूं, बाद वितंडा आय ॥ ७ ॥
देही माहिं विदेह है, साहेब सुरति स्वरूप ।
अनन्त लोक में रमि रहा, जाको रंग न रूप ॥८॥
बूझो करता आपना, मानो बचन हमार ।
पांच तत्व के भीतरे, जिसका यह संसार ॥९॥

॥ इति साहेब पहिचान का अंग ॥ १८ ॥

॥ अथ नाम पहिचान का अंग ॥ १९ ॥

राम नाम सब कोइ कहे, नाम न चीन्हे कोय ।
नाम चीन्हि सतगुरु मिले, नाम कहावे सोय ॥१॥
शून्य मरे अजपा मरे, अनहद भी मरि जाय ।
नाम सनेही ना मरे, कहैं कबीर समुझाय ॥ २ ॥
नाद नाद सव कोइ कहे, नाद न चीन्हे कोय ।
आतमरूपी नाद है, तत्व पहिचाने सोय ॥ ३ ॥

॥ इति नाम पहिचान का अंग ॥ १९ ॥

॥ अथ चाणक के अंग प्रारम्भः ॥

ब्राह्मण का अंग ॥ २० ॥

ब्राह्मण गुरु है जगत का, साधां का गुरु नाहिं।
उरझि २ मरि जायंगे, चारो बेदा मांहि ॥ १ ॥
कलि के ब्राह्मण मसखरे, ताहि न दीजे दान।
कुटुम्ब सहित नरके चले, साथ लिया यजमान॥
ब्राह्मण बूडा बापुडा, जनेऊ केरै जोर।
लख चौरासी माग लई, पार ब्रह्म से तोर ॥ ३॥
ब्यास बनी कथा कहै, भीतर भेदे नाहिं।
फिरि २ परमोधे और को, आपनि समझे नाहिं॥
मिशिर और मशालची, दोनो की यक बात।
औरे दिखावे चांदना, आप अंधेरे जात ॥ ५ ॥
मनमें तो फूला फिरे, करता हूं मैं धर्म।
कोटि करम जो शिर चढ़ै, जागि न देखै मर्म ॥६॥
पढ़े गुने सीखे सबै, मिटै न संशय शूल।
कहै कबीर कासे कहूं, येही दुख का मूल ॥

पढ़ पढ़ तो पत्थर भये, लिख २ किया चोरि।
जेहि पढने साहेब मिलै, वह पढना कछु और ॥
पण्डित पोथी बांधि के, देइ सिराने सोय।
वह अच्छर इन में नहीं, हंसदे भावै रोय ॥ ६ ॥
कै खाना कै सोवना, और न कोई चित्त।
हरिसा हीतु विसारिया, बाला पन का मित्त ॥
बूाह्मण ते गधा भला, आन देव से कुत्ता।
मुलना से मुर्गा भला, लोग जगावै सुत्ता ॥ ११ ॥
मुफ्त दान जो लेत हैं, मुफ्त देत आशीस।
सो ऊंट तिसका होयगा, लादेगा मन तीस ॥१२॥
पण्डित्त केरी पोथिया, ज्यों तीतर का ज्ञान।
औरन शकुन बतावही, आप परे फन्द आन ॥१३॥

इति बूाह्मण का अंग ॥ २० ॥

इस ब्राह्मण अंग के साखियों को देखकर बहुत स महाशय ब्राह्मणों की निन्दा समझ बैठेंगे इस हेतु से (ब्राह्मण किसे कहते हैं शास्त्र ने क्या निरूपण किया है और प्रचलित ब्राह्मण ब्राह्मण

पद्वी के अधिकारी है कि नहीं) उनके बिषय में थोड़ासा लिखता हूं पाठकगण बिचार करलेंगे ॥

सत्यंदानंक्षमाशौचं मातृशंस्यंतपाघृणा ।
विद्यन्तेयत्रराजेंद्रस ब्राह्मणइतिस्मृतः ॥ महाभारते

अर्थ—सत्य, दान, क्षमा, शुद्धि, अहिंसा, तप, और दया (ये धर्म के लक्षण) जिसमें विद्यमान् हो वह ब्राह्मण है (महाभारत का बचन) ॥

शमोदमस्तपोज्ञानं शौचंविज्ञानमार्जवमं ।
आस्तिक्यंहरिभक्तिश्च विप्रधर्माःस्वभावजाः ॥

अर्थ—शम (मनका जय) दम (इन्द्रियों का जय) तप, ज्ञान, दया, आस्तिकपणा (सत उपदेशी गुरु सतशास्त्र आदि में श्रद्धा) ईश्वर भक्ती, ये ब्राह्मण के स्वभाविक धर्म हैं, अर्थात् जिसमें ये, धर्म स्वभाविक पाया जावे चाहे वह किसी जाति का क्यों नहो ब्राह्मण हैं ॥ (धर्मोपदेश गीता)

नजातिःकारणंतात गुणाःकल्याणकारणं ।
वृतिस्थमपिचाण्डालं तंदेवाब्राह्मणंविदुः ॥

अर्थ—(भिष्म राजा युधिष्ठर से कहते हैं) हे तात मुक्ति में जाति कारण नहीं शमदमादि गुण कारण है । जो शमदमादि गुण चाण्डाल में भी बरतेंगे तो देवता उस चाण्डाल को भी ब्राह्मण

कहेंगे ॥ महाभारत से ॥ जो लोग के केवल जाति मात्र से ब्राह्मण को अपना कल्याण कारक मानते हैं उनको समझना चाहिये कि उपरोक्त महाभारत के वाक्य द्वारा जाति कल्याण का कारण नहीं तो जो (जाति मात्र का ब्राह्मण) अपना कल्याण करने में समर्थ नहीं वह दूसरों के उपकार करने में कैसे शामर्थवान होसक्ता है ॥ इस हेतु अपने कल्याण को चाहने वाले महाशय महाराजा कृष्ण चन्द्र के इस महावाक्या को भली प्रकार बिचारकर सत्य मार्गको धारण करें ॥

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणांचपरंतप।
कर्माणिप्रविभक्तानि स्वभावप्रवैर्गुणैः ॥ ४१ ॥

अर्थ—हे अर्जुन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों और शूद्रों के कर्म प्रकृति से उत्पात्ति है जिनके गुणों करके पृथक पृथक है ॥

तात्पर्य कि ब्राह्मणादि के कर्म गुणों के अनुसार पृथक पृथक हैं सो इसप्रकार से कि, सत्वगुण जिसमें प्रधान हो वह ब्राह्मण, [अर्थात् सब से अधिक सत्वगुण उससे कम रजोगुण उससे कम तमोगुण, सो जिसमें ये गुण पाया जाय वह ब्राह्मण।

जिसमें रजोगुण प्रधान, सत्वगुण उससे कम, और तमोगुण सतोगुण से भी कम, हो वह क्षत्रिय ॥

जिसमें रजोगुण प्रधान औरं सतोगुण से तमोगुण अधिक हो वह वैशय ॥ और जिसमें तमोगुण प्रधान हो उस से कम रजोगुण

उस से भी कम सतोगुण हो वह शूद्र है ॥

प्रमार्थ में तो यही यथार्थ चार विभाग हैं इसमें जाति का भेद न कर जिसमें [चाहे वह ब्राह्मण से लेकर दूसरे किसी जाति का क्यों न हो] यह लक्षण पाया जाय उसको वैसाही समझना ॥

यद्यपि इस देश में हिंदू लोगों की यह रीति है कि व्यवहार में जो ब्राह्मण कहे जाते हैं उनको जाति की अपेक्षा में बड़ा समझते हैं क्षत्री को उससे कम वैश्य को उससे कम और उससे कम अनेक जाति शूद्र व्यवहार करते हैं उन के अनेक नाम हैं ॥
कोई २ विचार हीन पुरुष कायस्थों को भी शूद्र कहते हैं परंतु सब ब्राह्मणादि आचार्यों का इसमे सम्मत नहीं और व्यवहार में भी सब लोग कायस्थही कहते हैं ॥

उनका व्यवहार चाल चलन क्रिया धर्म ब्राह्मणादि द्विजातियों से कम नहीं है ॥ हां इतना तो अवश्य है कि प्रायः मद्य मांसादि का प्रचार इन में [मुसलमानी शासन के काल से] होगया था सो यदि इसलिय कोई उनको शूद्र कहता हो तो यह युक्ति ठीक नहीं क्योंकि प्रायः ब्राह्मण क्षत्री ऐसे मद्य मांसादि आहार करते हैं कि अपना धर्माहि मान रक्खा है और बहुत से कायस्थ ऐसे हैं कि मद्य मांस को छूना तो अलग रहे मद्य मासाहारी के हाथों का भरा पानी भी नहीं पीते । और जैसे ब्राह्मणादि श्रौत स्मार्त कर्म करते हैं वैसे वे भी करते हैं और जो वे नहीं करते वह ब्राह्मणादि भी नहीं करते ॥

और सुनो यह कायस्थ शब्द संस्कृत है तथा इन के जाति के

भेद जो, इस चौपाई के अनुसार है ॥

माथुर गौड कर्ण भनीजे । बालमीकि श्रीध्वजहि गनीजे ॥
सकसेना श्रीबास्तव ऐसे । ऐस्ठाना अमष्ट कह जैसे ॥
भटनागर कुल श्रेष्ठ कहलावे । निगम नाम बारह बतलावे ॥

सो ये संस्कृत पद हैं इस हेतु से अंत्यज भी नहीं हो सक्के। लौकिक में वड़ाई द्रव्य, ऐश्वर्य, हुकूमत सौन्दर्यता से होती तथा लौकिक विद्या करके होती है और प्रमार्थ में ईश्वर भजन आदि शुभ कर्म करने से तथा ज्ञान निष्ठा होने से वड़ाई है यह कोइ नहीं कह सक्का कि कायस्थ लोक में ऐश्वर्य लौकिक विद्या आदिक से बड़ाई को प्राप्त नहीं है, अथवा शुभ कर्म करने से परलोक नहीं सुधार सक्का तात्पर्य यह कि कायस्थ भी श्रेष्ठ जाति, जैसे ब्राह्मण क्षत्री आदि है उन मे से एक है, प्रमार्थ में तो गुणों के ही विचार से वर्ण बिभाग है और व्यवहार में बहुत सी जातीय कल्पित है जैसे राजपूत तगा, भूमिहार, इन सभों को भी चारबर्ण में समझते हैं जाटगूजर आदि को कोई क्षत्री कोई वैश्य कोई शूद्र तथा अनत्यज कहते हैं। जैसे मुसलमान बर्ण आश्रमियों को काफिर कहते है और वर्ण आश्रमी इनको म्लेक्ष के नाम से पुकारते हैं सो ये सब झगरे व्यबहार के कल्पित है. प्रमार्थ दृष्टि से सब देशों के निवासी गुणों की अपेक्षा करके ब्राह्मण क्षत्री बैश्य शूद्र हैं क्योंकि सब त्रिगुणात्मकहै और सर्ब का नियन्ता स्वामी एकही है वह सम है तो भला यह बात कब होसक्की है कि ऐसे स्वामी ने और देशों के प्रजाओं को छोड़ केवल भारत भर्ष की प्रजा उनमें

भी केवल जाति मात्र के ब्राह्मण को लोक प्रलोक में श्रेष्टता देदी हो और सब इससे बंचित रहेहो । इस वास्ते गुणों करके जो वर्ण आदि का विभाग है उसी को यथार्थ और ईश्वरी नियम समझने योग्य है कि जो बिश्वभरके सर्व प्रजाओं में नियुनाधिक पायाजाता है॥

बहुत से मुसलमान, अंगरेज, पारसी आदि प्रजा शमदमादि सम्पन्न देखे जाते हैं इसीप्रकार शूरता धीर्य आदि तथा बाणिज्य आदि लक्षण अंगरेज याहूदी आदि में पायजाते हैं तो इस देशके ब्राह्मण क्षत्री और बणियों को सची जाति कैसे कह सक्ते हैं इनमें तो शमदमादिक नाम के भी नहीं और शूरता,बाणिज्यतो स्वप्नमें भी नहीं याद पड़ता क्योंकि अन्य देशमें जाने और जहाज पर गमन करने से इनके धर्म जाति आदि में बटा लगता है और यदि विचारकरकर देखाजाय तो ब्राह्मणों में सत्यादि गुणों के बदले छल कपट, ठगी, परायधन को लूटना, मिथ्या स्वर्गादि का आशा देस्त्री तक का हरण करना, स्त्री आदि को मिथ्या तीज त्यवहार की महात्म सुनाय भ्रम में डालना, तीर्थ आदिकों मेयमदूत रूपसे धूतने को बैठा रहना, कहीं २ लड़कियाँ की बिक्री आदि कराना मिथ्या ग्रह आदिकों की भय दिखला लोगों के धनका हरण करना ॥

तप और दया के बदले कहीं देवी आदिक की मूर्ती स्थापित कराय लक्षावधि जीवों का हिंसाकर आप निठुरता और अनाचार में प्रवृत हो दूसरों को वैसेही लगाना इत्यादि आस्तिक्य के बदले ईश्वर शास्त्र गुरुजन किसी पर श्रद्धा न रख सदा गरुड़ आदि

पुराणों का भय दिखा प्रजा को शोक समय में भी झूठी आशा में फसाय उसका सर्वश्वव हरण करना ॥

बिद्याके वदले योतिष के टूटे फूटे चार श्लोक अथवा संकल्प के कपोल कलपित मंत्र, कि जिसके शिर पैरका कुछ ठिकाना नहीं, सीखकर लोगों को मूड़ने के लिये घाट २ ग्राम २ फिरा करना ॥

उदारता और बुद्धि के वदले, आप तो शास्त्रों को विचारकर पढ़ना नहीं बल्कि सर्व को अनअधिकारी वताय सत्यमार्ग से भ्रष्ट करना ऐसे २ अनेक हैं कहांतक कहा जावे

इस मेरे लिखने से कोई ऐसा न समझ लेवे कि ब्राह्मणों को ऐसेही बतलाया प्रन्तु कहने का आशय यह है कि ऐसे धर्मच्युत केवल नाम मात्र के ब्राह्मण की इतनी अधिकता में यदि दो—चार दश—पांच, सच्चे ब्राह्मण भी निकल आवें तो क्या हुआ उनका होना इनके बीच में कैसा जैसा लंका के राक्षसों बीच एक बिभीषन॥

इन लोगों के ऐसी अवस्था होने से भारतवर्ष से बिद्या, बल, द्रब्य, वाणिज्य, कला कौशल आदि सर्व लौकिक परलौकिक गुणों ने परस्थान किया जिस्से वह भारत भूमी जो किसी समय पृथ्वीपर वल बिद्या आदिकों में अद्वितिय गिनी जाती थी उसके संतानआज काला, मूर्ख, वहशी, जंगली, आदि की नामसे पुकारे जाते हैं ॥

उपहार में भारत जननी के पूत्र ब्राह्मण आदि वर्ण साधू आदि आश्रमी सब महापुरुषों से बिनय है कि उठो गफलत को छोडो अपने गए हुए विद्या कला कौशल आदि गुणों को सम्पादन करो

अपने धर्म्म रूपी रत्न जो गांठसे खुलकर गिरा जाता है सम्भालो.

सबसे पहिले देश भाषा की उन्नति करो सर्व साधारण को देश भाषा की शिक्षा दो फिर तो इसके साथ २ सबही प्राप्त होता जायगा ॥ परम देव सतगुरु सर्व को धर्म सरक्षण की रुची और उत्साह दे ऐसी हमारी प्रार्थना है। शांतिः शांतिः शांतिः

राग मारू ॥

पांडे कौन कुमति तुम लागे ॥

बूडहुगे सकल परिवार सह राम न जपहु अभागे ॥ १ ॥ टेक। वेद पुराण पढ़ेका क्या गुण खर चन्दन जस भारा। राम नाम की गति नहिं जानी कैसे उतरसि पारा ॥ २ ॥ जीव बधुक धो धर्म करि थापहु अधर्म कहहु भाई। अपने को मुनिवर करि थापहु काको कहहु कसाई ॥ ३ ॥ मनके अन्धे आप बूझहु काहि बुझावहु भाई। माया कारण विद्या बेचहु जन्म अमिथ्या जाई ॥ ४ ॥ नारद बचन ब्यास कहत है शुक को पूछहु जाई। कहै कबीर रामे रमि छूटो नाहिन बूडहु भाई ॥ ५ ॥

चौपाई ॥

गर्भ बास महि कुल नहिं जाती। ब्रह्म बिन्दु ते सब उत्पाती ॥ १ ॥
कहुरे पण्डित ब्राह्मण कबके होय। ब्राह्मण कहि २ जन्म मत खोय ॥ २ ॥
जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणी जाया। तो आन बाट काहे नहि आया ॥ ३ ॥
तुमकत ब्राह्मण हम कत शूद्र। हम कत लोहू तुम कत दूध ॥ ४ ॥
कह कबीर जो ब्रह्म विचारे। सो ब्राह्मण कहियत है हमारे ॥ ५ ॥

पद ॥

आसन पवन दृढ़ कियरहुरे। मनको मैल छाडि दे वौरे ॥
का शृंगी मूद्रा चमकाये। क्या बिभूति सब अंग लगाये ॥
क्या हिन्दू क्या मूसलमान। जाको सावित रहे इमान ॥
क्या जो पढिया वेद पुराण। सो ब्राह्मण बूझै ब्रह्म ज्ञान ॥
कहै कबीर कछु आन न कीजे। राम नाम भजि लाहा लीजे ॥

पद ॥

मनरे अबते राम कह्योरे। फिर कहिबे को कछु न रह्योरे ॥
काभो योग यज्ञ जपदाना। जोतै राम नाम नहि जाना ॥
काम क्रोध दोऊ भारे। गुरु प्रसाद सब तारे ॥
कहै कबीर भ्रम नाशी। राजा राम मिले अविनाशी ॥

पद ॥

जबते रसना राम न कहि है। उपजत बिनशत भरमत रहि है ॥
जस देखी तरुवर की छाया। प्राण गये कहु काकी माया ॥
जीवत क्रिय कछु न प्रमाना। मुये मर्म कहु काकर जाना ॥
अंत काल सुख कोउन सोवे। राजा रंक दोऊ मिलि रोवै ॥
हंसा सरोवर कमल शरीरा। राम रसायन पिवै कबीरा ॥

पद ॥

क्या नागे क्या बांधे चाम। जोनहि चीन्है आतम राम ॥
नागे फिरै योग जो होई। बन को मृगा मुक्ति गो कोई ॥
मूड मुडाय जो सिद्धि होई। मूडी भेडि मुक्ति किन होई ॥

बिन्द राखे जो खेलहि भाई । सुमरे क्यों न परमगति पाई ॥
पढ गुनै उपजै हंकारा । अध्यह बूडे वार न पारा ॥
कहै कबीर सुनो रे भाई । राम नाम बिन किन सिधि पाई ॥

अथ भेष का अंग ॥

कर सेती माला जपै, हृदय बहे डंडूल ।
पगते पाला मे गला, भाजन लागी सूल ॥१॥
कर पकडे आगली गिमे, मन ध्यावे कहुं और ।
जो ध्यावे सोई मिले, सब एकठा ठौर ॥
माला फेरा मन कुसी, ताते कछु न होय ।
मन माला को फेरता, जग उजियारा होय ॥
माला फेरा मन कुसी, वहुतक फिरै अचेत ।
गांगी रोलै यों गया, हरि सो किया न हेत ॥
माला फेरे कछु नहीं, रूला फिरैगा भार ।
बाहर ढोला ही गलू, भीतर भरी भंगार ॥५॥
कबीर माला काठ की, मेलै मुगुध झुलाय ।
सुमिरण की तो सुधि नहीं, ज्यो ढीगर गालीगाय ॥
माला मोहिस से लडपडी, क्या फेरै है मोहि ।

जो मन फेरे आपनो, राम मिलावै तोहि ॥ ७ ॥
माला तो मनकी भली, और संसारी भेख।
माला फेरे जो हरि मिलै, गले रहट के देख ॥
माला फेरे क्या भया, गाठन हृदयकी खोय।
हरि चरणन चित राखिये, तबही अमरापुर जोय ॥
माला तिलक पहिर करी, भक्ति न आई हाथ।
दाढी मूछ मुडाय के, चले दुनी के साथ ॥ १० ॥
माला फेरा कछु नहीं, कांती मनके हाथ।
जब लगि हरि परसे नहीं, तबलग पांचू साथ ॥
केशां कहां बिगाडिया, जो मूडे सौ बार।
मन को क्यों नहि मूडिये, जामे विषय विकार ॥
मैं ममता मन मूडले, माथो मूडे काहि।
जो कछु किया सो मन किया, माथे किया नाहि ॥
स्वांग पहिरि शोदा हुआ, दुनिया खाई खूंदि।
जासेरी साधूगया, सो तो मेली मूंदि ॥ १४ ॥
वैष्णव भया यो क्या भया, जाना नहीं विवेक।

छापा तिलक बनाय के, दग्धे जन्म अनेक ॥१५॥
जप माला छापा तिलक, सरै न एको काम।
मन कांचे रंचि बृथा, सांचे राचे राम ॥ १६ ॥
तनको योगी सब करै, मन को करै न कोय।
सब सुख सहजे पाइके, जो मन योगी होव ॥
चतुराई हरि नाम ले, ये बातन की बात।
निसपरेही निर्धार को, गहि कहि दीना हात ॥
नौ सत साजे सुन्दरी, तन मन रही संजोइ।
पिव के मन भावे नहीं, उपटन किय क्या होइ ॥
कबीर हरिके भक्ति को, मनमें बहुत हुलास।
मेत्रासा भाजै नहीं, होन मतै निजदास ॥ २० ॥
माला धारी मन मुखी, माता दीसै धींग।
छेड़ा से मूरखपशू, माहे गुप्ता सींग ॥ २१ ॥
साकट कांचा दूध है, जो करिय सो होय।
कन फूका काजी भया, काम न आवै कोय ॥

❀ ॥ इति भेष का अंग ॥ २१ ॥ ❀

नोट—भेष धारणकर साधू बनने का आशय था कि सर्व प्रकार प्रवृत्ति के कार्य्यों से निवृत्त होकर अपने अंतःकरण की शुद्धि करते जिस्से उत्तम सच्चे ज्ञान भक्ती को प्राप्तकर मोक्ष के भागी हों सो तो ये भेषधारी साधू बनने के मुख्य प्रयोजन अंतःकरणकी शुद्धि को तो स्वप्ने में भी नहीं सीखते, प्रन्तु बाह्य चिन्हो के सुधारने और सीखने में सारा आयु समाप्त करलेते हैं. जैसा सन्यासी तो काषाय वस्त्रको छोड़ सफेद वस्त्र धारण करना अधर्म और परम निकृष्ट समझते हैं वैसेही वैरागी काषाय को निकिष्ट इसीप्रकार प्रत्येक भेषवाले अपनी २ भेषको उत्तम बताते, और सर्वदा इसीके यादमें रहते हैं कि अमुक हमारी मढ़ी अथवा धर्मशाला है, अमुक मढ़ी अथवा धर्मशाला के सन्यासी है, अमुक धुनी इसीप्रकार गोत्र द्वारा, जटा कमण्डलू, माला तिलक, जटा, विभूति, वस्त्र धुनो की राति और दतौने झोली आदिक के मंत्र सीखने में उरझे रहते हैं। शोक की बात है कि वे ये नहीं समझते कि स्वार्थी आचार्य्यों ने तो हमको अपने स्वार्थ के बशहो अपनी मंडली पंथ पढ़ाने के हेतु और झगड़ों में डाल दिया फिर गृहस्थ त्याग करने से क्या लाभ मिला, और ऐसी समझ न होनेके कारण भेष के पक्षमें फंसकर सहस्रशः कष्ट उठाते हैं, परन्तु उसको छोड़ नहीं सक्ते ॥

साखी ॥

बन ते भाग बिडहे पडा, करहा अपनी बान।
करहा वेदन कासों कहे, को करहां को जान ॥

इस हेतु सर्व बुद्धि बानी को उचित है कि विचार द्वारा ऊपर के संसारी आडम्बर को छोड अपने अंतःकरण के शुद्धि के उपाय शम, दम, उपरम, तितिक्षा, शील, संतोष, दया, धैर्य, सत्य, विचार, ज्ञान, भक्ती, विद्याभ्यास, सतसंगत, इत्यादिक शुभगुण रूप सच्चेभेष को धारण करे जिससे लोक परलोक सब स्थान में सुख आनन्द प्राप्त हो और जो इस प्रकार न करे और इसको न समझे उनको लोक में घरघर का भीख और मठमठ में टोकना बरतन मलने और महंत अधिकारियों के गाली बात सहने के सिवाय क्या प्राप्त हो सक्ता है और जब वर्तमान में यह हाल है तो परलोक की बात क्या कहनी है ॥

जो वहांही सुख को प्राप्त नहीं हुआ सर्वदा दुख और बन्धन में वह परलोक क्या सुधारेगा ॥ जियत न तरे मुअते का तरि हैं जियते जो न तरै ॥

❀ ॥ अथ मांस अहारी का अङ्ग ॥ ❀

मांस अहारी मानवा, प्रत्यक्ष राक्षर अङ्ग ।
ताकी संगत मत करो, परत भजन में भंग ॥१॥
मांस खाय ते ढेड सब, मद पीये ते घूंच ।
कुलकी दुरमति परहरै, राम भजै ते ऊंच ॥ २ ॥
मांस पराया खात है, सुरापान से हेतु ।

सो नर जड सो जायगा, ज्यौं मूली का खेत ॥ ३ ॥
यह कूकर का खान है, मानुष देह क्यों खाय ।
मुख में आमिष मेलता, नरक पडे सो जाय ॥४॥
मांस खाय रू मदिरा पिये, धन वेश्या को खाय ।
जुआ खेलै चोरी करै, अंत समूला जाय ॥ ५ ॥
मांस मछरिया खात है, सुरापान से हेत ।
ते नर नरके जांयगे, माता पिता समेत ॥ ६ ॥
वाराह मत्स्य अवतार कहत, समझे नहीं गँवार ।
सुरनर वाको ध्यान धरत है, ताको करै ख्वार ॥७॥
गोबर का चौका दिया, हाडी सीझै हाड ।
छूत बरावे चामकी, ताका गुरू है रांड ॥ ८ ॥
खूब खाना है खीचड़ी, जामे अमृत लौन ।
मांस रोटी खाय के, गला कटावे कौन ॥ ९ ॥
बकरी पत्ता खात है, ताकी काटी खाल ।
जो बकरी को खात है, ताका कौन हवाल ॥१०॥
आठ बांट करी गई, मांस मुल्लां गयो खाय ।

अजहूं खाल खटिक के, बिहिश्त कहां से जाय ॥
ई डाकिन बिस्मिल किया, घुग्गा कण किया हलाल।
मछली किन बिस्मिल करी, सब खाने का ख्याल ॥
काजी जिभ्या स्वाद बश, जीव हते सब कोइ।
चटि मसीत एको कहे, क्यों दर्गह सांचा होय॥
काजी मुलना भर्मिया, चला दुनी के साथ।
दिल से दीन बिसारिया, करद लई जब हाथ ॥१४॥
काला मुख कर करद का, दिलसे दूर निवार।
सबही सूरत सुभान की, अैमष मुलां न मार ॥१५॥
मुलने चढे मंदार को, अलख न बहेरा होय।
जिस कारण तूं बांग दे, सो दिल अंदर जोय॥१६॥
जोर करि जबह करै, मुख से कहै हलाल।
साहेब लेखा मांगसी, तब का कौन हवाल ॥ १७॥
जोर किया जुलम है, मांगे जीव खुदाय।
खालिक दर खूनी खडा, मार मुहों मुंह खाय॥
गला गुस्सा का काटिये, मियां कहर को मार।

जब यह पांचो बिस्मिल करे, तब पावे दीदार ॥
डंका मारे हरि भजे, यह पाखण्ड का भेष ।
रमिताराम न जानिया, कहै कबीर उपदेश ॥ २० ॥

॥ इति मांस अहारी का अंग ॥

नोट—हिंसा किये विना मांस उतपन्न नहीं होता, इस हेतु मांस सर्वदा अभक्ष्य है । हिंसा, एक अधर्म है कि जिस हिंसारूप अधर्म का और उसके फल बड़े बड़े दुःखों का वर्णन वेदादि शास्त्र मे तो पूर्ण रीति से है ही इसके अलावा असर्व धर्म के पवित्र ग्रन्थों शास्त्रों में वर्णित हैं. उन सब प्रमाणों का इस जगह संग्रह होना तो अत्यन्त कठिन है परन्तु, यहां पर थोड़े श्लोक आदि संग्रह किये जाते हैं ॥

इन धर्म शास्त्र के श्लोकों को देख यदि कोई महाशय शंका करे कि चिकित्सा शास्त्र में तो मांस भक्षण के बहुत गुण बतलाये है इससे मांस भक्षण विधि है । तो उसका उत्तर यह है वैद्यक शास्त्र से धर्म में कुछ भी सम्बन्ध [सिवाय धर्म शास्त्र के] नहीं लिया जासक्ता । जिस प्रकार व्याकरण शास्त्र में चोर, व्यभिचार आदि शब्दों को भी साधते और सिद्ध करते हैं उसी प्रकार वैद्यक में मांसो के भी गुण वर्णन किये गये हैं ॥ इससे उनको विधि नहीं समझा जा सक्ता ॥

हिंसा का निषेध और अहिंसा की विधि में सब शास्त्रों ने पूर्ण रीति से लिखा है और मनुषत्व भी इसी का नाम है कि विचार

द्वारा किसी दुख न देवै जैसा किसी हिन्दी शाअर ने कहा है ॥

शेर ॥

दर्द दिल के लिये पैदा किया इनसान को।
वरने ताअत के लिये कम न थे करोंवियां ॥

दर्ददिल-दया, इन्सान-मनुष्य ताअत-भजन, बन्दगी, सेवा, भक्ती करोंवियां-फिरिस्ता, देवता.

अब इसके आगे थोडे से श्लोक धर्मशास्त्रों के प्रमाण में मांस निषेध के लिखे जाते हैं ॥

❀ श्लोक ❀

शाकमूलफलैर्मेध्य यौवारन्तज्वभोजनम् ।
नतत्फलमवाप्नोति यन्मांसपरिवर्ज्जनात् ॥ १ ॥

अर्थ—जो मनुष्य शाक कन्दमूल और फलादि पवित्र भोजन करके फलको प्राप्त होते हैं वही फल मांस के न खाने वाले को मिलता हैं ॥

मद्यमांसंचयेनित्यं वर्जयन्तीहमानवा ।
जन्मप्रभृतिमद्यच सर्व्वेतेमुनयस्स्मृता: ॥ २ ॥

अर्थ—मद्य और मांस जे मनुष्य नित्यही जन्म से मरण पर्य्यन्त नहीं भोजन करते वे मुनियों के समान हैं ॥

यस्सुवर्षशतस्साग्र तपस्तेपेसुदारुणम् ।
नभक्षयन्तियेमांसं सममेतदुदाहृतम् ॥ ३ ॥

अर्थ—जो मनुष्य हजारों वर्ष दुःख सहिके तपस्या करते हैं और जो पुरुष केवल मांस का भक्षण नहीं करते दोनों समान कहे गये हैं ॥

यथाहस्तीपदेऽन्यानि पदानिपदगामिना ।
सर्व्वेन्धर्म्माह्यहिंसायां प्रविसन्तितथाध्रुवम् ॥ ४ ॥

अर्थ—जैसे हाथी के पैर में और जीवों के पैर आजाते है उसी रीति से सम्पूर्ण धर्म्मों के पैर अहिंसा रूपी पैर में निश्चय समा सक्ते हैं ॥

सर्ववेदाधिगमनं सर्वतीर्थावगाहनम् ।
सर्वयज्ञफलंचैव नैवतुल्यमहिंसया ॥ ५ ॥

अर्थ—चारों वेद के पढ़ने व तीर्थों के स्नान करने का वा सम्पूर्ण यज्ञों का जो फल है वह अहिंसा के समान नहीं है ॥

अहिंसापरमोयज्ञस्त्व हिंसापरमंश्रुतम् ।
अहिंसातपोत्त्वर्य्यं महिंसोयजतेसदा ॥ ६ ॥

अर्थ—अहिंसा परम यथ अहिंसा श्रेष्ट कथा का श्रवण है और अहिंसा ही नाश रहित तप व अहिंसा रूपी यज्ञ सदा करना चाहिये.

अहिंसासर्वभूतानां यथामातापितातथा ।
स्वमांसैःपरमांसानि परपाल्यदिवंगताः ॥ ७ ॥

अर्थ—जो कोई जीव नहीं मारता वह इस तरह से प्यारा होता है जैसे माता पिता अपनी मांस से दूसरे की पालना करके स्वर्ग को जाते हैं ॥

तदेवपरमंधर्म्म महिंसालक्षणंस्मृतम् ।
येऽपरन्तिमहात्मातों विश्नुलोकंब्रजंतिते ॥ ८ ॥

अर्थ—सो यही अहिंसा धर्म्म का बड़ा लक्षण है जो ऐसे महात्मा हैं वही विष्णु लोक को जाते हैं ॥

येभक्षयन्तिमांसानि सत्वानाजीवितैषिणाम ।
तेभक्ष्यतैःसदासर्वै रितिवदन्तिआत्मभूः ॥ ९ ॥

अर्थ— जो प्राणी उपयोगी पशुओं की मांस को खाता है वे पशु अवश्य कभी न कभी बदला लेवेंगे यह ब्रह्मा जी का वाक्य है.

स्वमांसंपरमांसेन योवर्द्धयतिमिच्छसि ।
नारदःप्राहधर्मात्मा नर्कैवसाविपच्यते ॥ १० ॥

अर्थ—जो कोई अपनी मांस को दूसरे की मांस खाकर बढ़ाने की इच्छा रखता है वह अवश्य नर्क में जावेगा यह नारद महात्मा वचन हं ॥

योऽहिंसकानिभूतानि हिंसात्मसुखच्छया ।
कृश्नाद्वैपायनःप्राह स्थावरत्वंसगच्छति ॥ ११ ॥

अर्थ—जो जीव हिंसा वाले नहीं हैं और उन्को कोई मनुष्य अपने आत्मा के सुख की इच्छा से मारता है वह स्थावर की योनि में जाकर जड़ता को प्राप्त होता है यह कृश्नद्वैयायनजी ऋषि कहा है ॥

संतप्यतेतपोजस्त्रं यजतेचददातिसः ।
मद्यमांसोनिवृत्तोयः प्रवावेदंवृहस्पातिः ॥ १२ ॥

अर्थ—जो कोई प्राणी मद्य मांस से निवृत्त रहता है वही बड़ा तप करनेवाला व जप. यज्ञ. और दान करने वाला होता है यह वृहस्पति जी का बचन है ॥

यावज्जीवतियोमांसे विषवत्परिर्ज्यते ।
वशिष्टोंभगवानाह स्वर्गलोकंसगच्छति ॥ १३ ॥

अर्थ—जो कोई जब तक जीवै और मांस के खाने को त्याग कर देवैं तो वह प्राणी अवश्य स्वर्ग गामी होता है यह बशिष्ट जी ने श्री रामचन्द्र जी से कहा है ॥

येमद्यायित्वामांसानि कश्चिदपिनिवर्तते ।
यमदग्निजमाद्देवं सोपिस्वर्गमवाप्नुयात् ॥ १४ ॥

अर्थ—जो कोई प्राणी मांस खाते रहे और अपनी बुद्धि या दूसरे के करने से त्याग करके फिर कभी न खावे तो वे भी स्वर्ग को जावेंगे यह यमदग्नि का बचन है ॥

रूपमारोग्यमैश्वर्य्यं श्नुतंस्वर्गादिमेवचः ॥
प्राप्नोत्यहिंस्रःपुरुषः प्राहैवमुशनाकविः ॥ १५ ॥

अर्थ—जो प्राणी हिंसा को कभी नहीं किया है वही रूपवान आरोग्यवान ऐश्वर्यवान और बेद जानने वाला होकर स्वर्ग में वास करेगा यह उशना जी का बचन है ॥

सुवर्णदानंगोदानं भूमिदानंतथैवच ।
नोत्तमंप्राणदांश्च पाराशरवचोयथा ॥ १६ ॥

अर्थ—सोना दान गौ दान भूमिदान अनेक प्रकार के दान लेकिन सर्वोत्तम दान प्राण दान है यह पाराशर जी का बचन है ॥

कर्म्मणामनसावाचा यो हिंसानिकिंचन ।
समित्रसर्वभूतानां मनुस्स्वायंभुवोब्रवीत् ॥ १७ ॥

अर्थ—जो प्राणी मनसा वाचा कर्म्मणा से हिंसा कभी भी न किया हो उसके सब प्राणी परम मित्र होजाते हैं यह स्वायंभूमनु का बचन है ॥

हंताचैवानुमंताच विस्वस्ताक्रयविक्रयी ।

संस्कर्त्ताचोपहर्त्ताच खादकश्चाष्टघातक ॥ १८ ॥
धनेनक्रयीकोहन्ति घुभोगेनखादकः ।
घातकोबधबंधाभ्या मित्येवत्रविधेवधाः ॥ १९ ॥

अर्थ--मारने वाला, मारने का सम्मति देने वाला, मांस का बेचने वाला, मांस का मोल लेनेवाला, मांस रांधने वाला, मांस परोसने वाला, मांस खानेवाला, ये आठ घातक है ॥

अर्थ--जीवों का घात तीन प्रकार से होता है, जो मांस मोल लेता है वह द्रव्य देकर घात करता है, यदि मोल लेनेवाला न हो तो विक्रियार्थ जीव हिंसा न हो, द्वितिय मास का स्वादी यदि मांस की इच्छा न करे तो हिंसा क्यों हो, तीसरा जो जीव को जीव मारता है चाहे बांधकर मारा जावे चाहे झटके से मार लेवे ये तीनों वधिकहैं ॥

नाकृत्वाप्राणीनांहिंसा मांसमुत्पद्यतेक्वचित ।
नचप्राणीबधःस्वर्यस्त स्मान्मांसंविवजर्येत ॥२०॥

अर्थ—प्राणी को मारे विना, कहीं कभी मांस उत्पन्न नहीं हो सका तथा प्राणियों का बध करना कल्याण कारी नहीं, इस्से मांस छोड़ देना चाहिये ॥

समुत्पत्तिञ्चमांसस्य बधबन्धौचदेहिनाम् ।
प्रसमीक्ष्यनिर्वतेन सर्वमांसस्यभक्षणात ॥ २० ॥

अर्थ—मांस की उत्पति प्राणियों के वध बन्धन को विचारकर सब प्रकार के मांस भक्षन से रहित होजाना चाहिये ॥

कद्यान्मांसंसदाचारी यज्ञशेषमपिक्वचित ।
सुरामद्यंसिवेन्नैव दृतदेवप्रसाद्यपि ॥ २२ ॥

अर्थ—सदा चार के पालने वाले मनुष्य, कभी भी यज्ञ के शेष रहे पुरोडासादि को न खाय, तथा यज्ञ के देव देवी की प्रसादी की महिमा से भी मद्द मांस न खावे ॥

(२) जो लोग शास्त्र के आशय को न समझ कर स्मृति आदि के प्रमाण कर मांस भक्षण योग्य समझते हैं उनके लिये कहते हैं कि.

नभक्षयतियोमांसं विधिहत्वापिशाचवत ।
सलोकेप्रियतामेति व्याधिभिश्चनपीड्यते ॥ २३ ॥

अर्थ—जो मनुष्य मांस भक्षण की विधि शास्त्र मे बताये हुवे को नहीं मानता, सो मनुष्य लोकों में प्रिय होता है, तथा व्याधियां से पीडित नहीं होता ॥ क्योंकि शास्त्र में कहा है.

यदियज्ञांश्चवृक्षांश्चयूपाश्चोद्दिश्यमानवाः ।
वृथामांसानिखादन्ति नैषधर्म्मःप्रशस्यते ॥ १ ॥
सुरांमत्स्यान्मधुमांस मासवंकृशरौदनं ।
धूर्त्तैःप्रवर्त्तितंह्येतत् नैतद्वेदेषुकल्पितम् ॥ २ ॥

मानान्मोहाच्चलोभाच्च लौल्य मेतत् पर कल्पितम ॥

अर्थ—मदिरा मछली मांस ताड़यादिओं के खाने को कहीं २ किसी धूर्त ने स्वादके हेतु श्लोक बनाकर लिख दिया है–किसी बेद में कहीं नही लिखा है ॥

मानते, मोहते, लोभते, अल्प बुद्धिवाले धूतौंने ऐसा कल्पना कर लिया है कि यज्ञादि का मांस परसाद हो जाता है ॥

और भी अनेक परमाण शास्त्रों में हैं वहां से देखलें ॥

❀ ॥ अथ नशा का अंग ॥ ❀

गौ जो बिष्ठा भक्षनी, बिप्र तमाकू भंग ।
शस्त्र बांधे दर्शनी, यह कलियुग का रंग ॥
कलियुग काल पठाया, भांग तमाकू फीम ।
ज्ञान ध्यान की सुधि नही, याही में आधीन ॥
भांग तमाकू छूतरा, अफयून और शराब ।

कबीर कौन करे बन्दगी, यह तो भये खराब ॥
भांग तमाकू छूतरा, जन कबीर जो खांहि ।
योग यज्ञ जपतप किये, सबै रसातल जाहिं ॥
भांग तमाकू छूतरा, सुरा पान ले चूट ।
कहे कबीर ता जीव की, धरमराय सर कूट ॥
भांग तमाकू छूतरा, जो इन से करे प्यार ।
कहें कबीरा जीव सो, बहुत सहे शिर मार ॥
भांग तमाकू छूतरा, परनिन्दा पर नारि ।
कहे कबीर इनको तजे, तब पावे दीदार ॥
सुरापान अचवन करे, पिवे तमाकू भंग ।
कहे कबीरा राम जन, तामे ढंग कुढंग ॥
मदिरा पीवे प्रेम ले, तम्बाकू नेह लगाय ।
कहै कबीरा तासु संग, कबहु न जैये भाय ॥
भांग तमाकू फीम को, दौड़ २ कर लेहि ।
कहै कबीर हरिनाम को, पीछेही पग देहि ॥
भांग तमाकू के ग्राहक, राम नाम के नाहि ।

कहै कबीर जनमे मरे, लख चौरासी माहि ॥
राखै ब्रत एकादशी, करें अन्न को त्याग ।
भंग तमाकू ना तजे, कहैं कबीर अभाग ॥
हरिजन को सोहै नही, हुक्का हाथ के माहिं ।
कहें कबीरा राम जन, हुक्का पीवे नाहि ॥
हुक्का तो सोहे नही, हरि दासन के हाथ ।
कहे कबीर हुक्का गहे, ताको छोडो साथ ॥
अमल अहारी आत्मा, कबहुं न पावे पार ।
कहै कबीर बिचारि के, त्यागे तत्व बिचार ॥
अमली के बैठो मत, एक पलकहूं पास ।
संग दोष तोहि लागिहे, कहै कबीरा दास ॥
अमली हो बहु पाप से, समझत नाहीं अंध ।
कहै कबीर अमली को, काल चढावै कंध ॥
जह लगि अमल सब हराम दोऊ दीन के माहि ।
कहै कबीरा राम जन, अमली हूजे नाहि ॥
भोंडी आवे बास मुख, हृदया होय मलीन ।

कहे कवीरा राम जन, मांग चिलम जिन लीन॥
भांग तमाकू छूतरा, सुरा पान पिवाय।
कहै कवीर पुकारि के, निश्चय यमपुर जाय॥
भक्त भांगहु ना भखा, तम्बाकू चित्त न दीन।
प्रेमी पोस्त ना पिया, कहै कबीरा चीन॥
जे नर आन अमल रचा, नाम अमल नहि पाय।
कहै कवीर यह चिन्ह है, देखो ठोक बजाय॥
कवीर मतवाला नाम का, मद मतवाला नाहि।
मद मतवाला जे फिरे, ते मतवाला नाहि॥
मदतो बहु भांति का, ताहि न जाने कोय।
तन मद मन मद जाति मद, माया मद सब लोय॥
विद्या मद रू गुण मद, राज मद है मद।
यतना मद को रद्द करै, तब पावै अनहद॥

॥ इति नशाका अंग ॥

॥ अथ भाषा का अंग ॥

संस्कृत सब सूज है, भाषा कृत अहार।

कहै कवीर सो सुलभ है, सुनि २ उतरे पार ॥
भाषा मध्ये संस्कृत, जाने सलिल सुभाय ।
बेद शास्त्रहु कहत है, भाषा अर्थ बुझाय ॥
संस्कृत पंडित कहै, बहुत धरै अभिमान ।
भाषा जानि तरक करै, ते नर मूढ़ अजान ॥
संस्कृत संसार में, परिडत करै बखान ।
भाषा भक्त दृढावहीं, न्यारा पद निर्बान ॥
संस्कृत है कूपजल, भाषा बहता नीर ।
भाषा सतगुरु सत्य कही, प्रकट कही कवीर ॥
पूरण बानी बेद की, शोभत परम अनूप ।
आधी भाषा नेत्र बिन, को लखि पावै रूप ॥

॥ इति भाषा का अंग ॥

❀ ॥ अथ भ्रम बिध्वन्स का अंग ॥ ❀

मृग जल चिलका देखिके, मन किया बिश्वास ।
पाहन पूजे प्राणिया, क्यों दुख जाय आस ॥
काठ पुरी मरकट मना, सत्तीकर जानी सोय ।

चेतन पूजे जड़को, भला कहांते होय ॥
पाहन पूजे प्राणिया, बहे विष्य की धार।
बोलता जीवत ना गहे, क्योंकरि उतरे पार ॥
पाहन केरी पूतरी, कर पूजे करतार।
यही भरोसे जग रहे, बूड़े काली धार ॥
चौरासी लक्ष जीवको, इन्द्री वरन मिलाय।
प्रतिमा के तो बरन नहीं, क्योंकर पूजे जाय ॥
पाहन को क्या पूजिय, जो न देवे ज्वाब।
अंधा नर आसे सुखी, योंही खोवै आब ॥
काम धेनु की पटतरे, करै काठ की गाय।
कोई दूध दूहै नही, ऐसी प्रतिमा आय ॥
पत्थर को क्या पूजिय, ना बोले न बतराय।
पूजि ले आतम रामको, मुख बोले अरु खाय ॥
पत्थर पीवै धोयकै, पत्थर पीवे प्रानि।
अंतकाल पत्थर भये, बहु बूड़े अज्ञानि ॥
मूरति धरि धंधा रच्यो, पाहन को जगदीश।

मोललिया बोलै नहीं, खोटा बिश्वा बीस ॥
धरती गिरिवर जिनरचा, सो क्यों रहे अपूज ।
ताहि फोड़ देवल रचा, परमेश्वर ते दूज ॥
पाहन ही का देहरा, पाहन ही का देव ।
पूजन हारा बावरो, करे कौन की सेव ॥
जाहि पूजै सो देवता, जो पूजे सो कौन ।
बुद्ध जन यही बिचारहू, बोलत भलो की मौन ॥
पाहन गढ़ि मूरति करी, नाम धरयो जगदीश ।
बतलावे बोलै नही, झूठी बिश्वा बीस ॥
सोनार सिलावट पण्डिता, इन बोरयो संसार ।
पीतर पाहन मिल रह्यो, बिसरयो सिरजनहार ॥
दुनिया पूजै देहरा, शीस नवावे जाय ।
हृदया माहि हरि बसै, तू ताही लवलाय ॥
पत्थरले देवल चुणा, मोटी मूरति मांहि ।
पड फूटै पर बस रहै, सो ले तारे काहि ॥
किरतम देवल सब पुजे, सुत दारा के हेतु ।

आतम राम न जानिया, जन्म जन्म अचेत ॥
जो नर पाहन पूजिके, होन चहे भव पार ।
कहै कबीर बिचारि के, ते बूडे मझधार ॥
काजल केरी ओवरी, मसका दिया कपाट ।
पाहन बोई पृथ्वी, पण्डित पाड़ी बाट ॥
पत्थर पानी पूजता, पचि मुवा संसार ।
भेष तो अलहदा रहा, भेदी उतरै पार ॥
पूजे शालिग्राम को, मनकी भ्रान्ति न जाय ।
शीतलता सपने नहीं, दिन दिन अधिकी लाय ॥
सेवा शालिग्राम की, माया केही हेत ।
पहिरे काली कामली, नाम धरावे स्वेत ॥
कबीर शालिग्राम का, मोहि भरोसा नाहि ।
काल कहर की चोट में, विनश जाय छण माहि ॥
कबीरा पाहन पूजिके, होन चहै भवपार ।
भीजे पण भेदे नहीं, बूड़ा जिन सिरभार ॥
लोहा केरी नावरी, पाहन गरुआ भार ।

कहै कबीर बिचारि के, भव बूड़ा संसार ॥
देवी देव मानै सबै, अलख न मानै कोय।
जा अलख ने सब किया, तासों बे मुख होय ॥
पाच तत्व का देहरा, माही आतम देव।
मुख बोलै पायन चलै, ताकी कीजे सेव ॥
सब बनतो तुलसी भयो, सब गिरी शालेग्राम।
सब नदिया गंगा भई, जब जान्यो आतमराम ॥
चलता देवल पूजिले, नहीं धरेसे काम।
जेते देखा आत्मा, तेते शालिग्राम ॥

॥ सोरठा ॥

जैसे पारस नाथ, तैसे शालिग्राम।
बूड़े एकै साथ, चेतन पूजा पाति बिन ॥
तीरथ करि करि जग मुत्रा, ऊंडे पानी नहाय।
करता पुरुष न ध्यावही, काल ग्रासे खाय ॥
तीरथ गये चंचल हिया, मनमें चालत चोर।
एको पाप न काटिया, दश मन लादे और ॥

गंगा काठे घर करे, पीवे निर्मल नीर।
मुक्ति नही हरि नाम बिनु, यों कथि कहै कबीर॥
पूजा सेवा नियम ब्रत, गुडियन कासा खेल।
जब लग पिया परसे नही, तबलगि संशय मेल॥
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया काशी जान।
दश द्वार का देहरा, तामे ज्योति पिछान॥
जब लगि भामिनी भर्ममें, तब लगि भर्म भुलाय।
जब कबिरा पिवको मिले, बहुरि न उन ढिगजाय॥
जप तप दीखे थोथरा, तीरथ ब्रत बिश्वास।
सुवना सेमर सेइ के, फिर उडि चले निरास॥
जो सच्चा बिश्वास है, तो दुख क्यों न जाय।
कहै कबीर बिचारि के, तन मन देहि जराय॥
कंकर पत्थर जोडिके, मसजिद लेहि चुनाय।
तामे मुलना बांगदे, क्यों है बहिर खुदाय॥
मै जान्या पढबो भलो, पढवाते भल योग।
राम नाम नीके गही, जो भल बन्दे लोग॥

केवल पढबो दूरि करी, अर्थ पढै सो सार ।
पीर नउपजे जीव को, क्यों पावे दीदार ॥
कबिरा पढ़वो दूर करी, पुस्तक देव बहाय ।
बावन अक्षर शोधिके, रामनाम चितलाय ॥
पढ़ता पढ़ता युग मुवा, पण्डित हुआ न कोय ।
एकै अच्चर प्रेम का, पढ़ै सो पण्डित होय ॥

❀ ॥ इति भर्म विध्वन्स का अंग ॥ ❀

❀ ॥ अथ आत्म अनुभव का अंग ॥ ❀

आत्म अनुभव सुखकी, जो कोइ बूझै बात ।
कै जो कोई जानई, कै अपनोई गात ॥
आत्म अनुभव ज्ञानकी, जो कोइ पूछे बाद ।
सो गुंगा गुड़ खाइके, कहै कौन मुख स्वाद ॥
ज्यों गुंगा के सैन को, गुंगेही पाहिचान ।
त्यों ज्ञानी के सुखको, ज्ञानी होय सो जान ॥
श्याम सब्ज़ विधि पंच जे, पीत अरुण अरु स्वेत ।
चक्षुमान अचच्चु को, ज्यों नाहिं उपमा देत ॥

ज्यों नरनारी के स्वाद को, खसी नहीं पहिचान।
त्यों ज्ञानी के सुखको, अज्ञानी नही जान ॥
ताको लक्षन को कहे, जाको अनुभव ज्ञान।
साधु असाधू देखियें, क्योंकर करौं बखान ॥
आत्म अनुभव जब भ्यो, तब नाहिं हर्ष बिषाद।
चित्र दीप सम होयरहयो, तजिकर बाद बिवाद ॥
कागद लिखे सो कागदी, कै व्यवहारी जींव।
आत्म दृष्टि कहां लिखै, जित तित देखै पींव ॥
लिखा लिखी की नाहि है, देखा देखी की बात।
दुलहा दुलहिन मिलगये, फीकी परी बरात ॥
ज्ञान भक्ति बैराग सुख, पीव ब्रह्म लों धाय।
आत्म अनुभव सेज सुख, तहां न दूजा जाय ॥
कहा सिखावन देत हौ, समुझि देखु मन माहि।
सबै हर्फ है द्वात मह, द्वात न हरफन माहि ॥
सुषुप्ति माहीं सब गले, मन बुधि चित्त प्रकास।
छिनक माहि परलय भये, को ठाकुर को दास ॥

जाग्रत जाग्रत सांच है, सोवत सपना सांच ।
देह गये दोऊ गये, ज्यों भगली की नाच ॥
अंधरे की हाथी ज्यो, सब काहू को ज्ञान ।
अपनी अपनी कहत हैं, काको धरिय ध्यान ॥
अंधरन की हाथी सही, है सांचे सगरे ।
हाथन की टोई कहें, आंखिन के अंधरे ॥
दूजा होय तो बोलिय, दूजा झगरा सोहे ।
दो अंधरन के नाचते, को काको मोहे ॥
निरज्ञानी से कहिय कहा, कहत कबीर लजाय ।
अंधे आगे नाचते, कला अकारथ जाय ॥
ज्ञान युक्ति सुनाइये, जो सुनि करै बिचार ।
सूरदास की स्त्री, कापर करै सिंगार ॥
ज्ञानी भूले ज्ञान कथि, निकट रह्यो निज रूप ।
बाहर खोजे बापुरे, भीतर बस्तु अनूप ॥
भीतर तो भेद्यो नहीं, बाहर कथै अनेक ।
जोपै भीतर लखिपरै, भीतर बाहर एक ॥

नैन समाने नैनमें, बैन समाने बैन ।
जीव समाने बूझ में, रहै ऐन के ऐन ॥
झारी फासी कूप में, भभकी पानी माहि ।
भरै भभक सब मिट गई, अब कछु कहनी नाहि ॥
भरौ होय तो रीतई, रीतौ होय भराय ।
रीतौ भरो न पाइये, अनुभव सोइ कहाय ॥
बचन वेद अनुभव उक्ती, आनन्द की परछांहि ।
बोधं रूप पुरुष अखण्डित, कहवे में कछु नाहि ॥
बुझन सरीखी बात है, कहन सरीखी नाहि ।
जेते ज्ञानी देखिय, तेते संशय नाहि ॥

॥ इति अनुभव ज्ञान का अंग ॥

॥ अथ अद्वैत ज्ञान का अंग ॥

सबे खलौना खांड मध्य, खांड खेलौना माहि ।
तैसे सब जग ब्रह्म में, ब्रह्म जगत के माहि ॥
खांड खेलौना दो नहीं, षांड खेलौना एक ।
तैसेही सब जग देखिय, किये कबीर विवेक ॥

खांड खेलोना तुम कहो, एक है नही दोय ।
नाम रूप दीसै पृथक, हस्ती घोडा सोय ॥
उपजै एकै खांडते, हस्ती घोडा ऊंट ।
खांड बिचारे पाइया, नाम रूप सब झूठ ॥
त्योंही एकै ब्रह्मते, जीव ईश जग जान ।
ब्रह्म बिचारे पाइया, नाम रूप को हान ॥
इश्वर में अरु जीव में, ब्रह्म मध्य कवीर ।
त्रिविधि भेद न देखिय, सिंध बुदबुदा नीर ॥
ज्योही एके शैल में प्रतिमा विविधि प्रकार ।
कहै कवीर त्योंही लसे, ब्रह्म मध्य संसार ॥
दारू मध्य ज्यों पूतरी, पूतरी मध्ये दारु ।
कहै कबीर त्यों ब्रह्म मे, भासत जग बिस्तारु ॥
कवीर लोहा एक है, गढने मे है फेर ।
ताही का बखतर बना, ताही का शमशेर ॥
नीर मध्ये ज्यों बुदबुदा, बुद बुद मध्ये नीर ।
त्यो जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्य जगत कवीर ॥

चीर मध्ये ज्यों तंतु है, तंतु मध्य ज्यो चीर ।
त्योंही जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रूह्म मध्य जगत कवीर ॥
आंधी यथा समीर मध्य, आंधी मध्य समीर ।
त्यो जग मध्य ब्रह्म है, ब्रूह्म मध्य जगत कवीर ॥
तम भय शीत न पाइये, ज्यों पावक बिस्तार ।
जीव ईश जग जोइले, त्योंही ब्रूह्म बिचार ॥
कबीर भिन्न न देखिये, जगत ईश अरु ब्रह्म ।
सब मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्ये सब भर्म ॥
ज्यों मृतिका घटन माधि, घट मृतिका मध्ये जोइ ।
त्योंही जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्ये जग सोइ ॥
जैसे स्याही अंक मध्ये, स्याही मध्ये अंक ।
त्यों जग मध्य ब्रह्म है, ब्रह्म मध्य जगत निशंक ॥
भूषन मध्ये कनक ज्यों, भूषन कनक मझार ।
त्योंही जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्ये जग निर्धार ॥
दरिआव मध्ये मौज ज्यों, मौज मध्ये दरिआव ।
त्योंही जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्य जगत सुभाव ॥

ज्यौं बघूरा बाव मय, मध्य बघूरा बाव ।
त्योही जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्य जगत सुभाव ॥
शरीर मध्य जो अंग है, अंग मध्य शरीर ।
त्योंही जग मध्य ब्रह्म है, ब्रह्म मध्य जगत कबीर ॥
व्योमे ज्यो घठ मठ अरु, चिदा काश आकाश ।
कहै कबीर यों ब्रह्म में, जीव ईश जग भास ॥
अंडुज स्वेदज उद्भिज अरु, पिण्डज आतमरूप ।
कहै कबीर बिचारिके, यों ज्यों सूरज धूप ॥
पावक एक अनेक जो, दीपक अरु मशाल ।
कहै कबीर त्यों जानिये, ब्रह्म मध्य जगजाल ॥
हथियारन में लोह ज्यों, लोह मध्य हथियार ।
कहैं कबीर त्यों देखिये, ब्रह्म मध्य संसार ॥
पानी मध्य लीक ज्यों, लीक मध्ये ज्यों पानि ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म जगत सो जानि ॥
ज्यों मृतिका घटफेन जल, कुण्डक कनक सोआय ।
त्यों कबीर जग ब्रह्मते, भिन्न कहूं न दिखाय ॥

जैसे तरुवर बीज मह, बीज तरुवर माहि ।
कहै कबीर विचारिके, जगत ब्रह्म के माहि ॥
जीव ब्रह्म ब्योरा नहीं, जीव ब्रह्म यक अंग ।
ज्यों कनक कुण्डल मृदु घट, सायर फेन तरंग ॥
जैसे सूरज धूप मध्य, सूरज मध्ये धूप ।
त्यो जग मध्य ब्रह्म है, ब्रह्म मध्य जगत स्वरूप ॥

❀ ॥ इति अद्वैत का अंग ॥ ❀

❀ ॥ अथ मध्य का अंग ॥ ❀

मध्य अंग लागा रहै, तरत न लागे वार ।
द्वै २ अंग के लागले, बूड़े सब संसार ॥
पार कहंते वार है, वार कहंते पार ।
वार पारके मध्यमें, देखो बहु बिस्तार ॥
कबीर दुर्मति दूरकरि, मध्य अंग रहो लाग ।
वह शीतल वह तप्त है, दोऊ कहिये आग ॥
अनल अकासे घर किया, मध्य निरंतर बास ।
बसुधा व्योम बिस्तार विन, ठहरि रह्यो विश्वास ॥

अनल पक्ष आवे नहीं, अपने सुतको लेन ।
वह अलीन वह लीन है, उलटि मिले सुखचैन ॥
अनल पक्षको चेगुटा, गिरते किया विचार ।
सुरति बांधि चैतन भया, जाय मिला परिवार ॥
जाय मिले परिवार में, सुख सागर के तीर ।
वरण पलटि हंसा भया, सतगुरु सत्य कबीर ॥
हिन्दू भूले राम कही, मुसलमान खुदाय ।
कबीर सोइ जन निर्मल, दोऊ निकट न जाय ॥
हिन्दू ध्यावे देहरा, मुसलमान मसीत ।
कबीर ध्यावे तासुको, जहां दोनों की परतीत ॥
हिन्दू करे एकादशी, मुसलमान करे रोज़ ।
दास कबीर दोउ छांड़ि के, तनमन अपना खोज ॥
दोउ दीन दो डालहै, वीच अंकुर अतीत ।
सो कबीर ऊंचा चला, छांड़ि दोऊ की रीत ।
हिन्दू पूजे देहरा, मुसलमान मसीति ।
कहै कबीर हमते गये, इन दोनों की रीति ॥

हिन्दू कहौ तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहि।
पांच तत्वका पूतला, गैबी खेलै माहि ॥
मक्का तो काशी भया, राम भया रहीम।
लोट चून एकै भया, बैठ कबीरा जीम ॥
नगर चैन तबही बसै, एक राज जब होय।
यही दुराजी राज में, सुखी न देखा कोय ॥
जो मन लागे एक से, तो निरवारा जाय।
मंदल दोय मुख बाजता, घनी तमाचा खाय ॥
जाया जाया सब कहे आया कहे न कोय।
जाया नाम जनम का, रहन कहां से होय ॥
आवत सब जग देखिया, जात न देखा कोय।
आवत जावत सो लखै, जाको गुरु गम होय ॥
जाके उर ते उठि गई, मै तै बड़ी बलाय।
कहै कबीर वह ब्रह्म है, सके कौन भरमाय ॥
पाप पुण्य दोऊ तजै, काले जनि पति आय।
सत्य बस्तु को जानिके, विघ्न नहीं कछु ताय ॥

रहनी राजस ऊपजे, करणी आपा होय।
रहनी करनी छाडिके, मध्याहि रहे समोय ॥
निर्गुण सरगुण छाडि के, मध्य रहे लपटाय।
कहै कबीर बिचारके, नहिं आवै नाहि जाय ॥
सुनी अनसुनी आत्मा, कह्यो कछू नहि जाय।
है नाही के संधि में, सतगुरु रहा समाय ॥
खोयो होय तो पाइये, पायो कहा समाय।
खोयो पायो जे कहे, ते रहे भ्रम भुलाय ॥
खोया कहे सो बावरा, पाया कहे सो कूर।
खोया पाया कछु नही, ज्यो का त्यों भरपूर ॥
भजूं तो को है भजन को, तजूं तो को है आन।
भजन तजन ते रहित है, सो कबीर मनमान ॥
भजन भरोसे वहि गये, बिन करिया के नाव।
निरखि निराला होय रहै, भजन न चूके दाव ॥
एक कहूं तो दोय है, दोय कहूं तो एक।
एक दोय के मध्य में, ज्यों का त्यों ही देख ॥

पाप करूं तो पुराय है, पुण्य करूं तो पाप ।
पाप पुराय के मध्य में, तहां कवीरा आप ॥
लेऊं तो महा बिग्रह, देऊं तो भुगतंत ।
लेन देन के मध्य में, सो कवीर निज संत ॥
माडि रहना मैदान में, सन्मुख सहना तीर ।
यम जगदीश के, मध्य में बसै कवीर ॥
हिन्दू तुरुक दोउ दीन में, मेरा नाम कवीर ।
जिव मुक्तावन कारने अविगत धरा शरीर ॥
हिन्दू तुरुक के मध्य में, शब्द कहूं निर्बान ।
बन्ध काटि मुक्ता करूं, मै रमता रहमान ॥
गुरु नही चेला नही, नही मुरीद नहि पीर ।
एक नही दूजा नही, तहां घर किया कवीर ॥
एक कहौं तो है नही, दुइ कहौं तो गारि ।
है जैसा तैसा रहै, कहै कवीर विचार ॥
गुप्त प्रगट के संधि में, जो कोइ आस्थिर होय ।
ज्यों देहर को देहला, बाहर भीतर जोय ॥

सुखिया सूये सुख करी, दुखिया दुखके झूर ।
सदा आनंदी संत जन, दुख सुख रहत हजूर ॥
हद चले सो मानवा, बेहद चले सो साध ।
हद बेहद दोऊ तजै, ताकर मता अगाध ॥
द्वैत भाव आसा तजै, मत अद्वैत निरास ।
खस्सी जीव परदा नहीं, नर नारी के पास ॥
रहने को जगह नहीं, जाने को नहि ठौर ।
कहै कवीर बिचार के, अविगति की गति और ॥
कथनी की माने नहीं, करनी दे छिटकाय ।
कहै कवीर बिचार के, मध्य अंग सचु पाय ॥

❀ ॥ इति मध्य का अंग ॥ ❀

❀ ॥ अथ समझा घट का अंग ॥ ❀

एक समाना सकल में, सकल समाना ताहि ।
कवीर समाना बूझ में, तहां दूसरा नाहि ॥
समझ सरीखी बात है, कहन सरीखी नाहि ।
जेते ज्ञानी देखिये, तेते संसय मांहि ॥

समझा घट से कर कथा, अन समझा से हांजि।
शब्द शब्द से आटि परे, ज्यों दूध में कांजि ॥
समझा घट का यह मता, शब्द बिचारे खेल।
जा घट जैसी रामता, ता घट तैसी मेल ॥
समझा को सेरी घणी, अन समझा कित जाय।
द्वार न पावै बूझका, फिर फिर भटका खाय ॥
समझा समझा सब एक है, अन समझा सब एक।
समझा सोई जानिये, जा के हृदय बिवेक ॥
कोटि स्थान पकरि मरे, कथै बिचारे लोय।
समझा घट तब जानिये, रहि तब कारस होय ॥
समझा सोई जानिये, समझ समाना माहि।
जब लग कछु कहावही, तब लगि समझा नाहि॥
साखी आंखी ज्ञान की, समझ देखु मन माहि।
बिन साखी संसार की, झगरा छूटत नाहि ॥
समझा का घर और है, अन समझा का घर और।
जा घर में साहब बसे, बिरला जाने ठौर ॥

समझे का घर और है, अन समझे का घर और।
समझे पीछे जानिये, ब्रह्म बसे सब ठौर ॥

॥ इति समझा घट का अंग ॥

❁ ॥ इति अंगकी साखी ॥ ❁

❁ ॥ द्वितिय भाग समाप्तः ॥ ❁

❁ ॥ शांतिः ! शांतिः !! शांति !!! ❁



॥ सद्गुरु ॥

॥ संत बिलास ॥



॥ जिसको ॥

श्री युत युगलानन्द भारत पथिक

ने संग्रह किया ॥

और

मुन्शी गङ्गाप्रसाद वर्मा ऐ० ब्रादरान यंत्रालय

लखनऊ में मुद्रित होकर

प्रकाश हुआ ॥

सम्वत् १९५५ बि०

* गुरुभ्यो नमः *

॥ श्री संत बिलास संग्रह ॥

॥ प्रथम बिलास ॥



॥ मंगलाचरण ॥

॥ छन्द ॥ १ ॥

प्रथम वन्दौं गुरु चरण जिन्ह अगम गम्य लखाइया । ज्ञान दीप प्रकाश करि पट खोलि दरश देखाइया ॥ जेहि कारणे सिद्धायचे सो गुरु कृपाते पाइया । अकह मूरति अमिय सूरति ताहि जाय समाइया ॥ १ ॥

॥ छन्द ॥ २ ॥

आदि ब्रह्म अनादि अकल, अभेद अवर्ण आगरं । सर्व व्यापक आर्य वीरज आनन्द धामी सागरं ॥ तुव चरण रवि प्रकाश अविचल, सकल काल कर्सज हरयो । अधम जीव अघोर खलजे, बिना श्रम भवजल तरयो ॥

❀ ॥ द्वितिय विलास ॥ ❀

॥ सार शब्द ॥

सार शब्द पाये विना, जीवहि चैन न होय ।
फन्द काल जेहि लखि परे, सार शब्द कहि सोय ॥

॥ चौपाई ॥

बेद पुराण किताब कुराना । दोहा साखी शब्द परमाना ॥
अनन्त भांति का शब्द पसारा । बिन जाने नहिं होय सुधारा ॥
सो सब शब्द बहु बिधि जांचे । यम फन्दा से तबही बांचे ॥
पक्ष बाणी को मन मत कहिये । जाते द्वन्द सबे वर लहिये ॥
निर्णय बाणी गुरु मत होई । जाते पक्षा पक्ष सब खोई ॥
अब निर्णय की बाणी भाखे । झूठा खोटा आप लजावे ॥
निर्णय सो सबके हितकारी । जेहि परसे जिव होय सुखारी ॥
सार शब्द निर्णय को नामा । जाते होय जीव को कामा ॥
विन निर्णय सो द्वन्द न जाई । पचि पचि मराहि कराहि लड़ाई ॥
जहं झगरा तह गुरुमत नाहीं । जहं गुरुमत तह द्वन्द नसाही ॥

❀ ॥ तृतिय विलास ॥ ❀

॥ संत गुरू लक्षण ॥

औरस मिलि अतिही सुखदाई । सम हम राम भजन अधिकाई ॥
जहं जीवन को करत सचेता । जग माही विचरत यहि हेता ॥
अति अनन्य अरु इन्द्रिय जीता । जाके हरि बिनु अनत न चीता ॥

मृग तृष्णा सम जग जिय जानी । तुलसी ताहि संत पहिंचानी ॥

॥ दोहा ॥

तुलसी ऐसे कहु कहूं, धन्य धरणि वहु संत ।
परकाजे परमार्थी, वृत्ति लिय निवहंत ॥
कै मुख पट दीन्हे रहैं, कै यथार्थ भाषंत ।
तुलसी या संसार में, सो विचार युत संत ॥
बोलें बचन विचारके, लीन्हे संत स्वभाव ।
तुलसी दास दुर्बचन के, पंथ देहि नहिं पाव ॥
शत्रु न काहू कर गिनै, मित्र गनै नहिं काहि ।
तुलसी या गति संतकी, बोले समता साहि ॥
सो जन जगत जहाज है, जाके राग न रोष ।
तुलसी तृष्णा त्याग करि, गह्यो शील संतोष ॥
निज संगी निज सम करत, दुर्जन को सुख दून ।
मल्या चल है संत जन, तुलसी दोष विहून ॥
कोमल वाणी साधु की, श्रवै अमृत सम आइ ।
तुलसी ताहि कठोर मन, सुनत मौन ह्वै जाइ ॥
अनुभव सुख उत्पति करै, भय भ्रम सबै उठाइ ।
ऐसी वाणी संतकी, जो उर भेदै आइ ॥
शीतल बाणी संतकी, शशिहु के अनुमान ।
तुलसी कोटि तपनि हरै, जो कोउ धारै कान ॥
तन करि मनकरि वचनकरि, दूषत काहू नाहिं ।

तुलशी ऐसे सन्त जन, राम रूप जगमाहिं ॥
मुख देखत पातक हरै, परसत कर्म विलाहि ।
बचन सुनत मन मोहगत, पूरण भाग मिलाहि ॥
अति कोमल अरु विमल रुचि, मानस मय मल नाहि ।
तुलशी रत मन ह्वै रहै, अपने साईं माहि ॥
जाके उरते उठगई, तिल तिल तृष्णा चाहि ।
मनसा वाचा कर्मना, तुलसी बन्दत ताहि ॥
कंचन कांचहि सम गिनै, कामिनि काष्ठ पषान ।
तुलशी ऐसे संतजन, पृथ्वी ब्रह्म समान ॥
आकिंचन इन्द्री दमन, रमन राम यकतार ।
तुलशी ऐसे संतजन, विरले या संसार ॥
अहंवाद मैं तै नहीं, दुष्ट संग नहिं कोय ।
दुखते दुख नहिं मानही, सुखते सुख नाहि होय ॥
सम कंचन कांचहि गनै, शत्रु मित्र सम दोइ ।
तुलशी या संसार में, कहत संतजन सोइ ॥
विरले विरले पाइये, माया त्यागी संत ।
तुलसी कामी कुटिल कालि, केकी काक अनन्त ॥
मैते मिटि निर्मोह मन, ज्यो आत्मा ज्ञान ।
संत राज सो जानिये, तुलसी ऐसहि दान ॥

❀ ॥ चतुर्थ विलास ॥ ❀

॥ संत समागम ॥

संत समागम कीजिये, तजिये और उपाइ।
सुंदर बहुताहि उद्धरे, सत संगत में आइ॥
सुरता जो हरि मिळन की, तो करिय सतसंग।
बिना परिश्रम पाइये, अविगत देव अभंग॥
संत मुक्ति के पौरिया, तिनसो करिये प्यार।
कूंची उनके हाथ है, सुंदर खोलहि द्वार॥
सुंदर साधु दयालु है, कहै ज्ञान समुझाय।
पात्र विना नहिं ठौर है, शब्द निकरि बहिजाय॥
संतन के यह बणिज है, निशि दिन ज्ञान विचार।
ग्राहक आवे लेन को, ताही के दातार॥

॥ पंचम विलास ॥

॥ चेतावनी ॥

बहुत गई थोरी रही नारायण अब चेत।
काळ चिरैया चुगरही, निशिदिन आयुष खेत॥
नारायण सुख भोग में, तू लम्पट दिन रैन।
अन्त समय आयो निकट देखि खोलि के नैन॥
धन यौवन यों जायगो, जा विधि उड़त कपूर।
नारायण गोपाल भजि, क्यों चाटै जग धूर॥

रम्भक शुम्भक निशुंभ अरु, त्रिपुर आदि लै शूर।
नारायण या कालने, किये सकल भटचूर ॥
हिरण्याक्ष जगमें विदित, हिरण कशिपु बलवान।
नारायण क्षण में भये, ये सब राख समान ॥
सगर नहुष ययाति भट, और अनेक महीप।
नारायण वह अब कहां, भुजबल जीते द्वीप ॥
कुम्भकरण दशकण्ठ से, नारायण रण धीर।
भये सकल भट काल वश, जिनके कुलिश शरीर ॥
दुर्योधन जग में विदित, जरासंध शिशुपाल।
नारायण सो अब कहां, अभिमानी भूपाल ॥
नारायण संसार में, भूपति भये अनेक।
मैं मेरी करते रहे, लै न गये तृण एक ॥
भुजबल जीते लोक सब, निर्भय सुख धन धाम।
नारायण तिन नृपन को, लिख्यो रहि गयो नाम ॥
हाथ जोरि ठाढ़ो रह्यो, जिनके सनमुख काल।
नारायण सोऊ बली, परे काल के गाल ॥
नारायण नव खण्ड में, निर्भय जिनको राज।
ऐसो विदित महीप जग, ग्रसे काल महराज ॥
जिनके सहजहि पग धरत, रज सम होत पषान।
नारायण तिनको कहूं, रह्यो न नाम निशान ॥

❀ ॥ षष्ठः विलास ॥ ❀

॥ सत्य शिक्षा ॥

सकल लोक मह व्याप्त है, जानत सब गुण तासु ।
तदपि न ध्यावत आतमाहिं, परि पूरण फल जासु ॥
पांच तत्व गुण तीनज़े, धरे तीन सुर देव ।
जाकी कृपा कटाक्ष ते, ताकी कीजे सेव ॥
विनु मारग साचा गहे, त्यागे विनु दुविधाय ।
मुक्ति लहे नहिं कोटि बिधि, वृथा जन्म शुभ जाय ॥
तजि दुविधा मन मूढ़ तू, भजिले आत्म ज्ञान ।
मोक्ष लहै संशय नहीं, बदत शास्त्र पौरान ॥
बिनु ध्याये निज जीव के, मन न लहै थिर ताहि ।
थिरता विनु शांतिहु नहीं, बदत सुबुध अवगाहि ॥
प्रथम चीन्हि निज रूपको, पहिचाने पुनि आप ।
यहि साधन साधक चतुर, मिटै सकल संताप ॥
जगत रम्यो कज्जल भवन, साधु परिक्षा हेत ।
प्रविशि कलंक बिना बहुरि, निकरत होइ सचेत ॥
समुझत करणी कठिन यह, बुद्धि अधिक भ्रम खाति ।
किमि कज्जल ते दोष गत, निकरे सजन स्वभांति ॥
परम ज्ञान को प्राप्त भये, अनुभव करत प्रकाश ।
अनुभव उपजत मिटत भ्रम, नाशत आशा पाश ॥

आशा पाशी नशतहीं, तृष्णा मोह विलात ।
अंत समै तब जीव यह, स्वयं ब्रह्म ह्वै जात ॥
संचित पातक नशत सब, उपजत अनुभव ज्ञान ।
क्रियमान निः काम सब, होत कहत गुणवान ॥
जाके ध्याय क्षणकु यक, कलिमल संचित जात ।
देह नगर सून भूप तहं, पावन सुखहि ददात ॥

❁ ॥ सप्तम बिलास ॥ ❁

॥ साधन ॥

मन इंद्रिन को भूप है, त्वचा करण चख वाक ।
घ्राणादिक न जानत कछू, विषय मांस मन काक ॥
प्रथम जाहि निजबश करै, परमातम आराधि ।
मिटै सकल चिंता तिमिर, ज्ञान सूर निर व्याधि ॥
दृढ़ बुधि ज्ञान पसारि के, मन शिक्षा दे त्यागि ।
गुह्य स्थल अनुभव उदै, जाय शांति रस पागि ॥
मानामान निरादरौ, आदर समता भाव ।
शुचि बासन आसन कुरुचि, सुरुचि सो एक स्वभाव ॥
ईर्षा जगकी तीन तजि, षट उर्मी अपनाय ।
दोष शोक भय सब तजे, अहं ब्रह्म पद पाय ॥
नित्य क्रिया साधन करै, देह अनित्य विचारि ।
आतम घाती होय नही, स्वयं ब्रह्म उर धारि ॥

ज्ञानी जो कर्मनि करै, तजै सो फल को काम ।
अज्ञानी फल आश करी, लहत अंत फल बाम ॥
ज्ञान वान को कर्म कोऊ, सिद्धक बंधक नाहि ।
जगत धर्म दृढ़ता लहै, करत हेत यहि आहि ॥
कर्म सकल धर्मिकन के, कर जगत हित लागि ।
सो ज्ञानी संसार में, रहै अमीरस पागि ॥
यजत देव करि लालसा, देव तपस फल देत ।
याही जगमें दुख सुख, पुनि प्राणी गहि लेत ॥
अपन पौ भूले फिरत, तिमिर अज्ञ उर छाय ।
ज्ञान दीप उदयत नही, तजत न दुबिधा भाय ॥
जित जित जीवाशा बिवश, जन्मत त्रैचर माहि ।
कर्म लिंग तन संग रहत, या मह संशय नाहि ॥
आतम भेव भुलाय के, भये योग मे लीन ।
सो पूरण पावत नही, अंत सो स्थान मलीन ॥
गुरु वाक्य पूरण बद्यो, ओंकार अनमोल ।
खोजत ता पद को न दृढ़, को ब्राह्मण को कोल ॥
ब्राह्मण की पदवी अधिक, चतुराश्रम के मांहि ।
बिना धर्म ब्राह्मण के, ब्राह्मण पदवी नाहि ॥
हंस बरण ब्राह्मण को, वेद वाक्य परमान ।
ज्ञान मुकुट बांधे बिना, सो नहि होत सुजान ॥
ब्रह्म क्रांति यह आत्मा, बदत वेद बेदांत ।

चीन्हे निज आतम चतुर, लहै ब्रह्म सिद्धांत ॥
आश भरोस विहाय जग, ब्रह्म ज्ञान बिचारु ।
उदासीन पथ सेइके, निज जन्मांत निवारु ॥
घट घट ब्रह्म अव्यक्त है, अव्यय प्रकट लखात ।
ब्रह्म ज्ञान सुदृष्टि मग, दुष्ट प्रकृति नहि तात ॥
जाके इच्छा मोक्ष की, सो यह करे उपाय ।
गृह कानन समता धरे, मान सनेह विहाय ॥
मंगल साचा आत्मा, जग असत्य साभांति ।
सत संगति जो नित करत, सेइये ताकी पांति ॥

॥ इति सप्तम विलास ॥

❀ ॥ अष्टम बिलास ॥ ❀

॥ उभय साधक गुण ॥

संसार में आनन्द पूर्वक सुख से आयु को व्यतीत करने और परलोक के सद्गति की इच्छा वाले पुरुष को उत्तम सतोगुण के गुणों को धारण करना चाहिये ॥ उनमें से सत्य शीलता ॥

प्रथम सब गुणों में परधान और श्रेष्ठ गुण सत्य शीलता है । इसको महिमा अपार है यह सबसे कठिन तप और यही पुरुष की वाणी का उत्तम आभूषन है । सत्यताही निर्मल कीर्ति का सहज मार्ग है । इसी सत्यता रूपी बीजसे मानका वृक्ष उगता है और उन्नति की लता फैलती है ॥ यही सद्गुणों में कांटेदार गुलाब है जिसकी

मीठी सुगन्ध हज़ारों मनुष्यों को दूर दूर से आकर्षितकर मोहित करलेती है ॥ यही जीवन रूपी सरोवर का कोमल कमल है जिसके महिमा को कितने मनुष्य मेढकों के सदृश नहीं समझते हैं। और यही जगत रूपी समुद्रपर सुवर्ण का दृढ़ सेतु है जिसके द्वारा अंतकाल में मनुष्य बिना एक पैसा दिये भी भवसागर पार होसक्ता है ॥

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हृदय सांच है ताके हृदय आप ॥

❀ ॥ नवम बिलास ॥ ❀

॥ आत्म सत्कार ॥

दूसरा गुण आत्म सत्कार अर्थात अपने मान और प्रतिष्ठा की रक्षा करना। जो मनुष्य अपने गौरव का ध्यान नही रखते तत्काल ही तिरस्कार के पात्र बन जाते हैं। इसमें संदेह नहीं कि जो मनुष्य अपने मान और प्रतिष्ठा की रक्षा करता है वह औरों से भी आदर और सत्कार का भागी होता है॥ यह निश्चय जानना चाहिये कि अन्यजनों के निरादर करने और स्वयं तिरस्कृत होनेका मुख्य कारण आत्म सम्मानिता न होना है ॥ अपने मान तथा गौरव का ध्यान रखने वाला पुरुष नतो किसी अधम कर्म के करने में उद्यत होते हैं न बुरे मनुष्यो की संगति करते हैं, न नीच लोगों के साथ बिवाद कर अपनी प्रतिष्ठा खोते हैं ॥

❀ ॥ दशम बिलास ॥ ❀

॥ आत्म निग्रह ॥

इन्द्रियों को बशमें रखना मनुष्य के लिये परमावश्यक है और इसीका नाम आत्म निग्रह है। चित्त और इन्द्री के प्रेरणा को समान भाव से बशमें रखना धर्म और नीति का मुख्य आधार है। आत्म निग्रह की विशेषता ही पुरुष के उत्तमता तथा शुभ गुणों की सिमा है। इन्द्रियों की लहर के झोंके में न आना घड़ी २ के चित्त के उमग के झोके में न पड़ना, बल्कि मन पर लगामकर, चित्तमें धैर्यधर, बुद्धि के अवलम्ब से विचारकर उनके झपट्टो को रोककर सबको सम भाव में बरताना शिक्षा, नीति, तथा धर्म का मुख्य उद्देश्य है ॥

इन्द्रियोंको ईश्वरने हमारे हितके लिये दिया है, हमको इन्द्रियों के हितके लिये नहीं किया ॥ यह विचारकर मनुष्यों को उचित है कि इन्द्रियों को किसी काम करने में अगुआ न बनाकर बुद्धि द्वारा शोच विचारकर पग धरें ॥

❀ ॥ एकादश बिलाश ॥ ❀

॥ क्षमा ॥

क्षमा के विषय में केवल यह श्लोक ही बहुत हैं ॥

॥ श्लोक ॥

क्षमा खड्गं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति ।

अतृणे पतितो वन्हिः स्वयमेवो पशाम्याति ॥

अर्थ—जैसे तृण रहित भूमिपर गिरी हुई अग्नि स्वयं शांत हो जाती है, इसीप्रकार जो मनुष्य क्षमा रूपी खड्ग हाथ में लिये है उसका कोइ दुर्जन कुछ भी नहीं करसक्ता ॥

क्षमा तेजस्विनां तेजः क्षमा ब्रह्म तपस्वीनाम् ।
क्षमा सत्य सत्यवतां क्षमा यज्ञः क्षमा शमः ॥

अर्थ—क्षमा तेज वालों का तेज है, क्षमा तपस्वियों का तप है क्षमा सत्यवालों का सत है, क्षमा यज्ञ है क्षमा शम अर्थात शांति है ॥

क्षमा वता मयं लोकः परश्चैव क्षमा वताम् ।
इह सन्मान मृच्छन्ति परत्र शुभां गातिम् ॥

अर्थ—क्षमा वाले को यह लोक सुखदायक है क्षमा वाले को परलोक सुखदायक है इसलोक में सन्मान को प्राप्त होता है परलोक में शुभगाति को पाता है ॥

❀ ॥ द्वादश विलास ॥ ❀

आत्म संबर्द्धन=आत्म उन्नति (स्वतंत्रता)

आत्म संबर्द्धन कार्य्य में स्वभाव का स्वतन्त्र होना एक अत्यन्त आवश्यक अंग है। जिसकी उतपत्ति और पोषन केवल नम्रता से है ॥ कोइ कोइ अभिमान कोही स्वाधीनता का जड़ कहते हैं परन्तु

ऐसा नहीं, अहंकार के कारन उसकी (स्वतंत्रता की) अवनति और सर्व नाश होता है। वे जो अपना जीवन प्रतिष्ठित निर्बाह करना चाहते हैं, उन्हे इसगुणका अवश्य अवलम्बन करना चाहिये॥ क्योंकि यह—स्वभाव की स्वतंत्रता—उन्हे स्व व्यवसायाधीन बनाता है, और अपने बलपर भरोसा रखने को शिक्षा और उतसाह देता है। उन्हे आत्म मर्य्यादा को भी भूलना नहीं चाहिये अर्थात् सदैव बड़े और उच्च पुरुषों के प्रति भक्ति रखनी बराबर तथा छोटों के साथ प्रेम भाव रखना क्योंकि, सारा संसार, हमारे आश्रित हमारा शरीर, हमारा जीवन हमारे कर्म्म, हमारे दुख, निज घरमें हमारी दशा विदेश में हमारे कष्ट हमारे पाप समूह, हमारे एकाध पुण्य आदि कितनेक विषय हैं जिस्के विचार और मनन करने से ही नम्रता के सिवाय दूसरा कोई स्थान अपने बचाव का नहीं दीखता ॥

इस्से उस भोलापन और मूर्खता को नम्रता नहीं समझ बैठना चाहिये, कि जो हम लोगों को केवल दूसरों की सम्मति पर चलने और अवलम्ब करने को बतलाता है ॥

कि जिस्से हमारे संकल्प लूले और लंगड़े होजाते हैं (कुछ नहीं करसक्ते) विचार शक्ति असमर्थ मुर्दा तुल्य होजाती है, जब उन्नति करना था पीछे हटना पड़ता है और समय सूचकता छोड़ देनी पड़ती है जिससे आत्म उन्नति कोसों दूर होजाती है॥

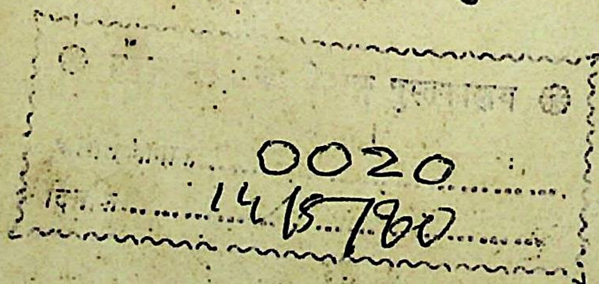
प्रन्तु स्वतन्त्र बनकर हम लोगों को निर्लज्ज हो अपना हलका पन तथा क्षुद्रता प्रकट न करना चाहिये न अपने ब्यवहार को अपकृति का नमूना बनाना चाहिये ॥

बल्कि अपने आचरण साधारण रखना और मनोर्थ ऊंचा फैलाना चाहिये, नम्र और उदार बन उत्साह को पकड़कर अपने गौरव की रक्षा करनी

चाहिये ॥ इसके अतिरिक्त वे लोग कोई अच्छा काम नहीं करसक्ते, जो दूसरों के सहारे खड़ा होना चाहते हैं नित्य नये पथदर्शकों की खोज में रहते हैं, स्वयं बिचार करना बुरा समझते हैं, ऐसों का जीवन जगत का कुछ उपकार नहीं करसक्ता॥ मनुष्य को स्वतंत्रता पूर्बक स्वयं बिचार करने की आदत डालनी चाहिये, अपनी सम्मति स्थिर करने और प्रमाणों को यथोचित ग्रहण करने का अभ्यास करना चाहिये, पर बालकों की तरह उन्ही को अपना अवलम्ब नहीं मानलेना चाहिये ॥

❀ ॥ इति संत विलास ॥ ❀

❀ ॥ यह ग्रन्थ समाप्त हुआ ॥ ❀



॥ प्रकाशित पुस्तकों की सूचीपत्र ॥

शब्द कुंजी (जो संतों की बाणी का यथार्थ आशय समझने की लालसा हो तो इस पुस्तक को अवश्य देखै) मूल्य केवल ।=)

बीजक मूल (कबीर साहेबकी सर्व पुस्तकों में अत्यन्त प्रसिद्ध वो माननीय पुस्तक) मूल्य केवल १)

बीजक मूल तथा पूर्ण साहेब कृत टीका सहित अब बहुत थोड़ी जिल्दें बाकी रही हैं जल्दी करो बादामी कागज मूल्य ३) सफेद कागज ५)

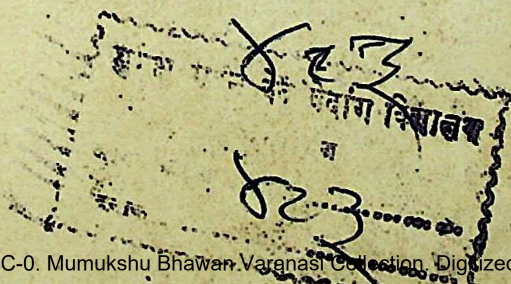
इसके अतिरिक्त.

गुरु अन्यास मूल्य ॥) बद्री यात्रा मूल्य =)

जपजी साहब (सटीक) मूल्य ‑)

पुस्तक मिलने का ठिकाना ॥

बाबू गंगा प्रसाद वर्म्मा ऐण्ड ब्राद्रान प्रेस अमीनाबाद लखनौ



उपरोक्त

पुस

